पंचम अध्याय

विभिन्न प्रकार की साधना पद्धतियों, कर्मकाण्डों और ज्योतिष आदि का उल्लेख

किसी भी लक्ष्य या उद्‌देश्य की सिद्धि के लिए जो स्वाभाविक उपाय किये जाते हैं उन्हें साधना कहते हैं, परन्तु धार्मिक दृष्टि से विशेषतः हिन्दू–दृष्टिकोण से उस परम पुरुषार्थ को ही साधना कहते हैं जो कि आध्यात्मिक ध्येय की प्राप्ति के लिए किया जाता है। इस साधना का अर्थ किसी भी प्रकार की क्रिया या कर्म होता है।

साधना ही असल में प्रत्येक वस्तु की प्राप्ति का उपाय है। यह सफलता की कुंजी है, कवि का कवित्व है, ऋषि का ऋषित्व है; क्योंकि ये सब साधना के ही द्वारा प्राप्त किये जाते हैं। साधक को साध्य वस्तु साधना के द्वारा ही प्राप्त होती है। ऐसी दशा में सहज में यह बात सामने आती है कि साधना अपने कार्य–कारणात्मक भावों और फलों से पहचानी जाती है। साधना के द्वारा आत्मलाभ होता है और आत्मलाभ के द्वारा दिव्यत्व, सर्वज्ञता, सर्वशक्तिमत्ता प्राप्त हो जाती है। आत्मलाभ का ही फल अनन्त विभूतियों की प्राप्ति भी है।

भारतवर्ष कर्म–प्रधान और साधना प्रधान देश है, परन्तु इसकी साधना मुक्ति–परक, आत्म–परक अथवा ब्रह्म–परक है।

कवि रूद्रप्रताप के अनुसार साधना के मूल तत्त्व तप, स्वाध्याय और ईश्वर–प्रणिधान हैं। इनसे साधक की शक्ति और ज्ञान की वृद्धि होती है। स्वाध्याय से ज्ञान और तप से शक्ति बढ़ती है। साथ ही ज्ञान और शक्ति द्वारा ही साधक परम साध्य तक पहुँच जाता है।

महात्मा गाँधी अहिंसा और सत्य के द्वारा ही बड़े–से–बड़े लक्ष्य तक पहुँचना बताते हैं प्राचीन लोग ब्रह्मचर्य और तप को ही मुख्यतः देते हैं। पातंजल योग चित्त–वृत्ति के निरोध को ही परम पुरुषार्थ और साधना बताता है। वस्तुतः किसी भी सात्त्विक उपाय द्वारा गंतव्यमार्ग की ओर चल देना ही वास्तविक साधना है। साधना में आवरण को हटाने के लिए विघ्नों का सामना करने और अभावों को हटाने की अपेक्षा सद्भावों को उत्पन्न कर उन्हें सुपुष्ट करना ही सिद्धि का सर्वोत्तम उपाय है; इससे विघ्न स्वतः नष्ट हो जाते हैं और अतिशीघ्र सफलता हस्तगत हो जाती है; क्योंकि किसी सीधी रेखा को हाथ के द्वारा छोटी करने की अपेक्षा उसके बराबर एक बड़ी रेखा खींच देना ही ठीक है, उससे वह अपने आप छोटी हो जायेगी। स्वभाव से समस्त जीव–राशि उस अनन्त सत्य वस्तु की ओर ही जा रही है। आत्मा की गति असल में परमात्मा की ओर ही हो सकती है, विजातीय वस्तु की ओर नहीं, नदियाँ समुद्र में ही जाकर रहती है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्डात्मक जड़–चेतन का अन्तिम ध्येय असल में आत्मलाभ ही है। तत्व

इसका अभिप्राय यह है कि हमारे सम्पूर्ण क्रिया–कलाप साधनामय ही हैं। ऐसी दशा में हम कुछ भी करें, कहें और सोचें, सब कुछ साधना ही है, परन्तु इन क्रियाओं का समन्वय साधनात्मक तत्त्वों के साथ होना चाहिए। साथ ही इनमें आवश्यक सामंजस्य भी पर्याप्त मात्रा में हो। ऐसी दशा में प्रत्येक साधनासम्पन्न मार्ग और सम्प्रदाय यथाधिकार पृथक् होता हुआ भी एक ही सम्पूर्ण लक्ष्य का प्रदर्शक हो जाता है। यही कारण है कि लता–गुल्म, कीट–पतंग, पशु–पक्षी और देव–मानव सब ही अपनी–अपनी योनि और स्थान से ही कभी–न–कभी अन्तिम लक्ष्य की ओर ही पहुँचकर रहते हैं।

'साधना' भारत की आध्यात्मिक सम्पत्ति है। चरम लक्ष्य की प्राप्ति के लिए यह सोपान अवश्य अवलम्बनीय है।

भारतवर्ष 'साधना' प्रधान देश है। इसकी मुख्यतः दो धाराएँ हैं– (1) वैदिक और (2) तांत्रिक। दोनों में अवश्य ही कुछ भिन्नता है, जो प्रयोगात्मक एवं सिद्धान्तात्मक भी है, परन्तु लक्ष्य स्थिर होने पर यह भेद 'नहीं' के बराबर हो जाता है। लक्ष्य और अधिकारी तथा उपकरण–भेद से जैसे साधना में भेद होता है, इसी प्रकार देश–काल, कृपा और सामर्थ्य के भेद से साधनाएँ भी भिन्न–भिन्न प्रकार की होती हैं।[1]

साधना के प्रथम चरण में आसनशुद्धि, देहशुद्धि, भूतशुद्धि, आचमन, प्राणायाम, अंगन्यास, करन्यास, षोढान्यास आदि क्रियाएँ अपेक्षित हैं। धीरे–धीरे जब उक्त क्रियाएँ शरीर, मन तथा इन्द्रियों को परिवर्तित करती हैं, तब शनैः–शनैः उनमें दिव्यता आती है। इस दिव्यता के सातत्य–हेतु अनेक विधि–निषेध शास्त्रदृष्ट हैं।

गीता में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं–

/;k;rk fo"k;ku iql% l³xLr"kitk;rA
l³xkRlUtk;r dke% dkekRØk/kk·fHktk;rAA
Øk/kk)ofr lEekg% lEekgkRLe`frfoHke%A
Le`frHka'kn cf)uk'kk cf)uk'kkRi.k';frAA[2]

'विषयों का चिन्तन करने वाले पुरुष की उन विषयों में आसक्ति हो जाती है, आसक्ति से उन विषयों की कामना उत्पन्न होती है और कामना में विघ्न पड़ने से क्रोध उत्पन्न होता है। क्रोध से अत्यन्त मूढ़भाव उत्पन्न हो जाता है, मूढभाव से स्मृति में भ्रम हो जाता है, स्मृति में भ्रम हो जाने से बुद्धि अर्थात् ज्ञान–शक्ति का नाश हो जाता है और बुद्धि का नाश हो जाने से यह पुरुष अपनी स्थिति से गिर जाता है।'

---

1 कल्याण, गीताप्रेस, गोरखपुर, संख्या 11, वर्ष 74, पृ0 911

2 गीता, अध्याय–2, श्लोक 62–63

अतः इन्द्रियों को विषयों की ओर से हटाकर अन्तर्मुखी करना साधना का प्रथम सोपान है। कर्मेन्द्रियों के संयम के लिए वाह्य उपाय हैं– आसन लगाकर बैठना तथा बाँयें हाथ में कुशा और दायें हाथ में माला रखना; मुख के संयम के लिए ब्रह्मचर्य का पालन करना। इन सभी का मुख्य आधार आसनसिद्धि ही है।

इस कारण समस्त कर्मकाण्ड आदि में सर्वप्रथम 'आसनप्रतिष्ठा' ही विहित है। योगदर्शन के आठ अंगों में प्रथम दो 'यम' और 'नियम' बहिरंग हैं, अवशिष्ट छः अन्तरंग अंगों के आरम्भ में ही 'आसन' का विधान है।

आसन केवल आराम या सुख के लिए कोमल वस्तु पर बैठना नहीं है, अपितु वह तो आधारशिला है, जिस पर साधना टिकी है और दिव्य (आध्यात्मिक) के साथ भौतिक (वैज्ञानिक) भी हैं।

गीता में भी स्पष्ट है–

'kpkS nsa'ks izfr"BkI; fLFkjekluekReu%A
ukR;qfPNªra ukfruhpa pSykftud'kksRrjeAA
r=Sdkxza eu% dRok ;rfpRrsfUnz;fØ;%A
mifo';klus ;qT;k|ksxekRefo'kq);sAA[1]

शुद्ध भूमि में, जिसके ऊपर क्रमशः कुशा, मृगछाला और वस्त्र बिछे हैं, जो न बहुत ऊँचा है और न बहुत नीचा, ऐसे अपने आसन को स्थिर स्थापन करके उस आसन पर बैठकर चित्त और इन्द्रियों की क्रियाओं को वश में रखते हुए मन को एकाग्र करके अन्तःकरण की शुद्धि के लिए योग का अभ्यास करें।

कवि कहते हैं कि सर्वविधि साधना–प्रणाली के अभ्यासी साधक के शरीर में एक 'शक्ति' की उपलब्धि होती है, उस समय यद्यपि देखने में सामान्यतः स्थूल शरीर यथावत् ही रहता है, पर यह 'शक्ति' हमारी पांचभौतिकता को शनैः–शनैः दूर करती है।

---

1 गीता, अध्याय–6, श्लोक 11–12

ब्रह्मचर्य, संयम, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि आदि क्रियाओं द्वारा शरीर की भौतिकता शनैः–शनैः दिव्यता की ओर अग्रसर होती है। इस समय भी पृथ्वी अपनी आकर्षण–शक्ति से दिव्यता को प्रभावित करती है।

इस प्रकार अनन्त भावमय भगवान् के समीप पहुँचने के रास्ते भी अनन्त है। मकड़ी जैसे अपने अंदर से जाल फैलाकर उसके केन्द्र में बैठी रहती है, वैसे ही ईश्वर इस विश्व–ब्रह्माण्ड का सृजन करके इसके बीच में बैठे हैं। वृत्त की परिधि के किसी भी बिन्दु से सीधे केन्द्र तक पहुँचने के लिए जैसे भिन्न–भिन्न सीधी रेखाओं की आवश्यकता होती है, वैसी ही परिधि में स्थित प्रत्येक जीव को सृष्टि के केन्द्रस्थल में पहुँचने के लिए पृथक्–पृथक् साधना पद्धतियों, कर्मकाण्डों का प्रयोग करना पड़ता है।

एक प्रकार से जितने जीवन हैं, उतने ही मत हैं और जितने मत हैं उतने ही पथ भी हैं। मनुष्य में जैसे रुचि और चरित्रगत सादृश्य होता है वैसे ही रुचि, स्वभाव, संस्कार और वातावरण के अनुसार मनुष्य की साधना पद्धति, कर्मकाण्ड में भी सादृश्य होता है।

''मानव जीवन को सफल बनाने के लिए सभी शास्त्रों में चतुष्पुरुषार्थ साधना को ही महत्व दिया गया है। भारतीय ज्योतिष भी धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष साधन का ही संदेश देता है।''[1]

मनुष्य के समस्त कार्य ज्योतिष के द्वारा ही चलते हैं। व्यवहार के लिए अत्यंत उपयोगी दिन, सप्ताह, पक्ष, मास, अयन, ऋतु, वर्ष एवं उत्सवतिथि आदि का परिज्ञान इसी शास्त्र से होता है। यदि मानव–समाज को इसका ज्ञान न हो तो धार्मिक उत्सव, सामाजिक, त्यौहार, महापुरुषों के जन्मदिन, अपनी प्राचीन–गौरव– गाथा का इतिहास प्रभृति किसी भी बात का ठीक–ठीक पता न लग सकेगा और न कोई उचित कृत्य ही यथासमय सम्पन्न किया जा सकेगा।

---

1 मानस और ज्योतिष, वी0बी0 सिंह, प्रथम संस्करण 1997, पृ0 162

सुसिद्धान्तोत्तम रामखण्ड में ज्योतिष का उपयोग कवि ने विभिन्न बिम्ब–विधानों के माध्यम से करते हुए आदि गुह्य ज्ञान ज्योतिष को आद्य आध्यात्मिक ज्ञान के रूप में निरुपित किया है।

पारमार्थिक दृष्टि से परिशीलन करने पर भारतीय ज्योतिष का रहस्य परम ब्रह्म को प्राप्त करना है। रामकथा के प्रत्येक लेखक ने अपने–अपने दृष्टिकोण से कथा–वस्तु का चयन किया व राम को यथा रुचि मानव, विष्णु अवतार अथवा ब्रह्म रूप में चित्रित किया है। तुलसी की अपनी विशेषता यह है कि उन्होंने राम के चाप–वाण धर रूप में ज्योतिष के 'काल–पुरुष' की छवि देखी है और उन्हें तदनुरूप बनाने के लिए ब्रह्म के ओंकार स्वरूप को त्याग कर भी निगमागम सम्मत स्वरूप बनाये रखने के लिए गुण, धर्म, स्वभाव बोधक कुछ नये शब्दों का प्रयोग किया है। 'ईश्वर अंश जीव अविनासी' की प्रस्तुति में उन्होंने जीव और ब्रह्म के समान सच्चिदानन्द स्वरूप को प्रधानता देते हुए ब्रह्म के ज्योतिष शास्त्र सम्मत 'काल–पुरुष' स्वरूप का स्पष्टीकरण किया है।

ज्योतिष ही मात्र ऐसा शास्त्र है जो जीव के धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष साधन का प्रत्येक क्षेत्र में ध्यान करके हित चिंतन की बात करता है तथा इच्छानुकूल सबकी साधना की प्रेरणा देकर सत्य का दर्शन करते हुए वैदिक सत्य को बोध कराता है। ,

कवि ने भी अपने काव्य में ज्योतिष शास्त्र का प्रयोग किया है। रामखण्ड महाकाव्य में उनका ज्योतिष ज्ञान स्पष्ट झलकता है–

vid vid in jkflu ykxA T;kfrpØ dj ckjg HkkxAA
>[k e<hdj Hkkx lekuA fcf) mHk; Øe mrØe tkuAA
T;kfr"k v# ijku nkm n[khA nkm ,d= er efuUg fcl[khAA
Å[kk0;f"V e/; g tkbA jtuhe[k ckje[k lkbAA

l/;kdky fclky tc gkr fcnk:u tkfuA
fu'p; fudj djky HkV jfcfg xlu pg ikfuAA[1]

ज्योतिष के अनुसार शुभाशुभ मुहूर्त ज्ञान या जन्म पत्र आदि संबंधी ज्ञान के लिए पंचांग ज्ञान आवश्यक है। पंचांग को (1) तिथि, (2) वार, (3) नक्षत्र, (4) योग, (5) कारण, सहित पाँच अंगों का विवरण उपलब्ध कराने वाला वार्षिक प्रकाशन होने के कारण ही पंचांग कहा जाता है–

if"V vf/kd =; lr fnu tkbA lcr lkj dgkor lkbA
cgfj cjl dj ikp ikdkjkA ekl pkfj fc/k efuUg fcpkjkAA
cRlj lcRlj ifjcRljA vuqcRlj b}Rlj gl ljAA[2]

भारतीय पंचांग साधारणतया विक्रम संवत् के आधार पर ही चलते हैं और नव वर्ष के प्रवेश का पर्व उन्हीं के अनुसार मनाया जाता है।

आकाशस्य क्रान्तिवृत्त के असंख्य ज्योति पुंजों में काल व्यवस्था की दृष्टि से सूर्यादि ग्रहों के परिक्रमा पथ को निश्चित करने की दिशा में कुछ स्थिर प्रतीत होने वाले तारापुंजों की पहचान की गई। इन तारा पुंजों को उनके द्वारा बनाये गये चित्रात्मक आकारों का नाम देकर नक्षत्रों की संज्ञा दी गयी। इस प्रकार सत्ताइस (27) ऐसे तारा पुंजों की पहिचान कर आकृति के अनुसार उनका नामकरण किया है–

mHk;ekl dj txin tkuhA lcRlj Hkkjofg lX;kuhA
=;lr lk/k pkfj fnu tkbA lkb g pkfnd cjl fc tkbAA
uk{kf=d tkb ekl dgk;A lRrkbl vg dj xuk;AA[1]

---

1 रामखण्ड रामायण, बालकाण्ड, दो0 306, चौ0 5–8, पृ0 130
2 रामखण्ड रामायण, बालखण्ड, दो0 308, चौ0 6–8, पृ0 131

आकाश में भगवान् विष्णु का जो शिशुमार के समान आकार वाला तारामय स्वरूप देखा जाता है, उसके पुच्छ–भाग में ध्रुव अवस्थित है। यह ध्रुव स्वयं घूमता हुआ चन्द्रमा और सूर्य आदि ग्रहों को घुमाता है। उस भ्रमणशील ध्रुव के साथ नक्षत्रगण भी चक्र के समान घूमते रहते हैं। सूर्य, चन्द्रमा, तारे, नक्षत्र और अन्यान्य समस्त ग्रहगण वायु–मण्डलमयी डोरी से ध्रुव के साथ बँधे हैं–

rkjke; j?kjkt fu:ikA lu fllekj pØ dj :ikAA
rL; iPN Åij /kc FkkbA tx tk d vk/kkj lkgkbAA
vufFkj xxu fj{kfcr lkbA dMfyfØr tkdj ru tkbAA
mj vH;rj jke fuoklkA /kcfØr Hkefg fujrj cklkAA
l;pn Hkx [kpj trA c/k lehju iklu rrAA[2]

सूर्यदेव, नदी, समुद्र, पृथ्वी तथा प्राणियों से उत्पन्न–इन चार प्रकार के जलों का आकर्षण करते हैं तथा आकाशगंगा के जल को ग्रहण करके वे उसे बिना मेघादि के अपनी किरणों से ही तुरन्त पृथ्वी पर बरसा देते हैं।

इस प्रकार सम्पूर्ण यज्ञ, वेद, ब्राह्मणादि वर्ण, समस्त देवसमूह और प्राणिगत वृष्टि के ही आश्रित हैं। अन्न को उत्पन्न करने वाली वृष्टि ही इन सबको धारण करती है तथा उस वृष्टि की उत्पत्ति सूर्य से होती है।

सूर्य का आधार ध्रुव है, ध्रुव का शिशुमार है तथा शिशुमार के आश्रय हरि हैं। उस शिशुमार के हृदय में हरि स्थित है जो समस्त प्राणियों के पालनकर्ता तथा आदिभूत सनातन पुरुष हैं। इन प्रसंगों को देखकर ऐसा लगता है कि कवि की इन विषयों में गहरी पैठ थी। उसने बड़ी तन्मयता से ज्योतिष ज्ञान की अभिव्यक्ति की है।

कवि रूद्रप्रताप वाल्मीकि से भिन्न अपने ज्ञान और पाण्डित्य का प्रदर्शन करते हैं। यहाँ हम कवि के ज्योतिष–चक्र निरूपण का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए

1 रामखण्ड रामायण, बालखण्ड, दो0 209, चौ0 1–3, पृ0 131
2 रामखण्ड रामायण, बालकाण्ड, दो0 313, चौ0 3–7, पृ0 133

देख सकते हैं कि कवि वाल्मीकि से इतर नितान्त मौलिक कल्पना का संयोजन करते हुए काव्य–सृजन में प्रवृत्त होता है– राम विवाह के प्रसंग में बारात–गमन के अवसर पर कवि प्रकृति का वर्णन करता है। जो चित्ताकर्षक है–

pyh cjkr tFkk l|[k lkbA cj[kfg| Qy vejxu tkbAA
fuR;fg| ukd vej&cjukjhA cj[kfg| cjekyk vf/kdkjhAA
dlfj;k| cjkrcj n[khA tu| iykl cu Q|ym fcl[khAA
lxu gkr ukukfcf/k tkbA fut lR;kjFk ixVfg| lkbAA
nfPNu dkd l|[kr y[kkofg|A pkjk pk[k ckefnfl ikofg|A
ud|y i:rPN lu d vkxA l|jHkh cRl fivkm lHkkxAA
ykoh fQfj fQfj ny d ikIkA dj fut lxu dj fcLok lkAA
nfPNu fQfj d|jx cg| vkofg|A exye; fut lxu n[kofg|A[1]

इस प्रकार हम कहते हैं कि ज्योतिष की सबसे बड़ी उपयोगिता यही है कि यह समस्त मानव–जीवन के प्रत्येक और परोक्ष रहस्यों का विवेचन करता है और प्रतीकों द्वारा समस्त जीवन को प्रत्यक्ष रूप में उस प्रकार प्रकट करता है जिस प्रकार दीपक अंधकार में रखी हुई वस्तु को दिखलाता है। मानव का व्यावहारिक कोई भी कार्य ज्योतिषशास्त्र के ज्ञान बिना नहीं चल सकता है।

किष्किन्धापथ में कवि रूद्रप्रताप राम के बहाने ऐसे ऐसे अवांतर कथा प्रसंगों की कल्पना है जिससे पूरा कथा प्रवाह ही संजाल बन जाता है। लेकिन यह कवि की नवीनता है और गुरु परम्परा एवं गुरुकृपा से प्राप्त ज्ञान की अभिव्यक्ति है। ये अवान्तर कथाएँ किष्किन्धापथ में मुख्यता राम–लक्ष्मण संवाद, शंकर–पार्वती आदि के संवादों के माध्यम से रची गयी हैं। यहाँ कवि वाल्मीकि से पूर्णरूपेण अलग प्रसंगों का सृजन करता है। उदाहरणार्थ निम्नलिखित कथाएँ

1 रामखण्ड रामायण, बालकाण्ड, दो0 888, चौ0 1–8, पृ0 369–370

प्रस्तुत हैं–

(क) सत्यनारायण व्रतकथा वर्णन

सत्यस्वरूप भगवान नारायण ही सत्यनारायण हैं। सत्य धर्म के प्रतिष्ठा हेतु उन्होंने सत्यनारायण का अवतार धारण किया और सत्य की महिमा स्थापित की। इस सम्बन्ध में भगवान ने जो लीला की, वह ^lR;ukjk;.k&dFkk* के नाम से लोक में प्रचलित हो गयी। भारतवर्ष में सत्यनारायण व्रत–कथा अत्यंत लोकप्रिय हैं। भारतीय सनातन परम्परा में किसी भी मांगलिक कार्य का प्रारम्भ भगवान गणेश के पूजन एवं उस कार्य की पूर्णता भगवान् सत्यनारायण की कथा–श्रवण से समझी जाती है। कवि किष्किन्धाकाण्ड के उत्तरार्ध के प्रथम खण्ड का प्रारम्भ सत्यनारायण व्रत कथा वर्णन से करता है–

,fg fclke dgm lcr jok[kMk}rA
vk[; lR;ukjk;u lnj ljy lirAA[1]

वर्तमान समय में भगवान् सत्यनारायण की प्रचलित कथा स्कन्दपुराण के रेखाखण्ड के नाम से प्रसिद्ध है, जो पाँच या सात अध्यायों के रूप में उपलब्ध है। भविष्यपुराण के प्रतिसर्गपर्व में भी भगवान् सत्यनारायण व्रत–कथा का उल्लेख मिलता है, जो छः अध्यायों में प्राप्त है। यह कथा स्कन्दपुराण की कथा से मिलती–जुलती होने पर भी विशेष रोचक एवं श्रेष्ठ प्रतीत होती है।[2]

कथा के माध्यम से इसमें मूल सत्–तत्त्व परमात्मा का ही प्रतिपादन हुआ है और सत्य के व्यवहार द्वारा नारायण की उपासना का मार्ग निर्दिष्ट हुआ है। अन्तःकरण की निर्मलता तथा निश्छल भाव से भगवान् की भक्ति का मार्ग प्रशस्त होता है। भगवान् को ऐसे ही भक्त विशेष प्रिय हैं।

मनसि अन्यत्, वचसि अन्यत् और कर्मणि अन्यत्– यह छद्म कल्याण–मार्ग

---

1 रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्ध प्रथम खण्ड, विश्राम 47, दो0 1161, पृ0 533
2 संक्षिप्त भविष्यपुराण, प्रतिसर्गपर्व द्वितीय खण्ड, सत्यनारायण व्रत कथा, पृ0 299

का सर्वोपरि बाधक है, अतः सब प्रकार से एक रहते हुए विशुद्ध भाव से ही भगवान् की आराधना करनी चाहिए और ऐसी ही आराधना नर को नारायण बना देती है–

lR;ukjk;.kk[;kr ori ukjk;.k'ojeA
drk lo.Qyi.kflr% /ku/kkU; lrkfUor%AA[1]

यही मूल बात इस सत्यनारायण कथा से मुखरित होती है। सत्य की ही सर्वदा विजय होती है, असत्य की नहीं– ^lR;eo t;fr ukure* यह इस कथा का मूल संदेश है। भगवान नारायण प्रत्यक्ष फल देते हैं, क्योंकि धर्म के चार पाद हैं– सत्य, शौच, तप और दान। इनमें सत्य ही प्रधान धर्म है। सत्य पर ही लोक का व्यवहार टिका है और सत्य में ही ब्रह्म प्रतिष्ठित है, इसलिए सत्यस्वरूप भगवान सत्यनारायण का व्रत परम श्रेष्ठ कहा गया है।

सत्यनारायण–पूजन, तथा कथा–श्रवण अन्तन्य पवित्र, पुण्यप्रद और समस्त मंगलों को प्रदान करने वाला है। बड़े ही उत्साह एवं श्रद्धा–भक्ति से समन्वित होकर इसका अनुष्ठान करना चाहिए। इससे जीवन में सत्य की प्रतिष्ठा स्थापित होती है और भगवान् की विशेष कृपा भी प्राप्त हो जाती है–

/kU; /kjkry ,fg cr djrkA jHkk [kfj ubc| lijrkAA
gkVdeb ifrek ukjkfxgA iy ck tFkklfDr dfj fcxgAA
Qy lkef;d ygb tkb ikuhA vib ukjk;u ij vkuhAA
jktl rke dyl cuokbA cL=kNUu lfcxg&ykbAA[2]

इस प्रकार मन में संकल्प कर सायंकाल में विधिपूर्वक भगवान् सत्यनारायण की पूजा करनी चाहिए। पूजा में पाँच कलश रखने चाहिए। चारों ओर भगवान् के सुन्दर विग्रहों को लगाना चाहिए। मण्डप के मध्य में भगवान

1 रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्ध प्रथम खण्ड, विश्राम 47, दो0 1161, पृ0 533

2 रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तराध प्रथम खण्ड, विश्राम 47, दो0 1162, चौ0 1–4, पृ0 533

सत्यनारायण (श्री विष्णु भगवान् या शालग्रामशिला) के लिए एक सिंहासन लगाकर उस पर भगवान् के विग्रह को प्रतिष्ठित करना चाहिए। शालग्राम को पंचामृत आदि से भलीभाँति स्नान कराकर चन्दन आदि उपचारों से भक्तिपूर्वक उनकी अर्चना करनी चाहिए। फिर भगवान् सत्यनारायण व्रत कथा को सुनना चाहिए। सत्यनारायण व्रतकथा में सत्य–धर्म की मुख्यतः है।

कथा में यह बताया गया है कि अति निर्धन विप्र द्वारा सत्य का संकल्प करके उस प्रतिज्ञा का पालन करने से उसे भगवान् प्राप्ति हो गयी, यही स्थिति काष्ठ विक्रेता की भी हुई। इसके विपरीत साधु वाणिक ने अपनी प्रतिज्ञा का पालन नहीं किया, छद्म व्यवहार किया, अन्तर्यामी भगवान से असत्य भाषण किया, फलतः उसकी तथा उसके परिवार की अत्यंत दुर्गति हुई, पुनः उसने करुणामय भगवान् की शरण ग्रहण की तो उसका सर्वविध अभ्युदय हो गया। उसे बैकुण्ठ की प्राप्ति हुई। इन दृष्टान्तों द्वारा हमें भगवान के सत्–मार्ग के अनुपालन की प्रेरणा प्राप्त होती है। इन सब कारणों से सत्य अथवा सत्यनारायण की महिमापरक यह व्रत–कथा सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाला होता है।

कथा–श्रवण के अनन्तर भगवान् के प्रसाद को भली–भाँति वितरण करें। तत्पश्चात् ब्राह्मणों को भोजन कराये एवं स्वयं भी मौन होकर भोजन करें।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि परमेश्वर ही त्रिकालाबाधित सत्य है और एकमात्र वही ज्ञेय, ध्येय एवं उपास्य है। ज्ञान–वैराग्य ओर अनन्य भक्ति के द्वारा वही साक्षात्कार करने के योग्य है। श्रद्धा–भक्तिपूर्वक पूजन, कथा–श्रवण, एवं प्रसाद ग्रहण आदि के द्वारा उन सत्यस्वरूप परब्रह्म परमात्मा भगवान् सत्यनारायण की उपासना से लाभ उठाते हुए अपने जीवन में सत्य की मर्यादा को स्थापित करने का व्रत लेना चाहिए।

(ख) हनुमान मंत्र प्रयोग वर्णन

हनुमान राम कथा के प्राणतत्त्व हैं। वे निरंतर जागरूक एवं सक्रिय हैं। हनुमान को यह बोध है कि राम ब्रह्म हैं, किन्तु मायामानुष हैं तथा मात्र लीला कर रहे हैं। रामभक्त हनुमान के हृदय–आगार में धनुर्धारी राम विराजमान रहते हैं।

शिव के अंशावतार हनुमान असम्भव को भी सम्भव बनाने की अद्भुत शक्ति के संवाहक हैं। उनकी वन्दना करने पर सभी देवताओं का अनुग्रह सहज हो जाता है, प्रसन्न होने पर वे वांछित कामनाओं को पूर्ण करते हैं। दैत्य, दानव, निशाचर, भूत, प्रेत इत्यादि हनुमान भक्त को नहीं सता सकते। पवित्र होकर उनका ध्यान करने मात्र से सभी राक्षसों – प्रकोपों का प्रभाव क्षीण हो जाता है। रोग व संताप दूर हो जाते हैं, दुख वेदना मिट जाती है। शत्रुओं का भय नहीं रहता, दुष्टों का दमन हो जाता है। दुरात्माओं से मुक्ति मिलती है, डर जाता रहता है और उसे समस्याओं का निदान मिलता है–

l|ur dFkkl| tFkk gj Hkk[kkA bo ckuj gj eu| vfHkyk[kkA
ckyh ifrfg l|jfr jfr :ikA cfuv eu| i:;kx dfo&Hkk ikAA
dk dfi ;g dk dj vorkjkA dl eu| dl i:;kx vf/kdkjkAA
vktu; :nk vork:A vFkinkfu l|j&fcVikdk:AA
fi:;: dhl cj eu| ,fg ykdkA HkfDrefDrnk gjrk lkdkAA
ldj i|jk ykd fgr g|rA cjfum| exjkt dfi d|rAA
Hkr i:r lfilkp HkokuhA tPN ljkPNl Mkfduh tkuhA
eu| vuBku ek= efu&uk;dA Hkktfg| /ku| fceDr ftfe lk;dAA[1]

हनुमान जी को अष्टसिद्धि नव निधि के दाता, महाबली, महान सेवक के रूप में स्मरण किया गया है। हनुमान मंत्र की रचना कवि ने मंत्रसिद्धि और दुखमोचन के लिए किया–

1 रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्ध प्रथम खण्ड विश्राम 50, दो0 1201 चौ 1–8, पृ0 553–554

djb v;|r eu| cj dj tkiA gkb fcfnr Hko i:cy i:rkiAA
uDrk lh fcftr:fn:; gkbA gkb ikou fno C; lu fcxkbAA
Nn: jkx lk fuokju gr:A vLVkRrj lr tfi eu| dr:AA
tib f=fnu ,dkr fugkjhA jkx l?ku cu dfj njckjhAA
v"VkRrj lr leu| idklkA djfg| tkb eu /kfj fcLoklkAA
Hkr i:r lfilkp ?kujA gkfg| uLV ifu feyfg| u gjAA
egkjkx mi lkfr lk grA vLVkRrj lgl: ti lrAA
egkjkx r| rfg Nufg NVb l|tkid lkfuAA
gkb fu;rklu fu;r eu djb ldy xngkfuAA[1]

पुराणों और रामायणों में इनके अद्‌भुत चरित्रों का अनेक स्थानों में वर्णन आया है। धर्मशास्त्रों में इनकी सेवा–पूजा और स्तोत्रपाठादि का महत्फल बतलाया है और आराधना के ग्रन्थों में इनकी उपासना के लोकोत्तर फल देने के विधान हैं। वास्तव में हनुमान् जी ने समुद्र के लांघने, सुरसा, लंकिनी और अक्षयादि का क्षय करने, लंका जलाने, रावणादि का तिरस्कार करने और पाताल में प्रविष्ट हुए राम को लाने आदि में सर्वोत्कृष्ट वीरत्व और स्वामी की सेवा तथा भक्तों की अभीष्टसिद्धि आदि में सर्वाधिक दासत्व दर्शाया था। ऐसे सर्वोत्तम देव की उपासना अवश्य ही हितकारिणी होती है–

;g eu| tk iR;g guekuA i:tb cr dfj lnk fu/kkuAA
rfg fxg jek vpipy ck lkA nh?kk;o t; txr idklkAA
ekjh vkfn Hkr lNkHkkA fxg dk nlg| djfg| u ykHkkAA
,fg r: lk/ku ijeu| ukghA C;k?k pkj ck/kk fefV tkghAA
doug| Hkkfr dj vfj gkbA fe= leku lk/kdfg lkbAA
[kV i:;kx fcf/k lefr lukbA tk=k tk fp:rb dfijkbAA
ckfNr cxor lkb ykgA ygb Fkkg dkjt voxkgAA
l;u dky ti| eu| ;g dhlkA Hkktfg| Hkr vkBg|

---

1 रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्ध प्रथम खण्ड, विश्राम 50, दो0 1205, चौ0 1–8, पृ0 556

nh lkAA[1]

कवि कहता है कि हनुमान जी की महिमा का वर्णन नहीं किया जा सकता, उसके गुणगान के लिए यह जीवन बहुत ही न्यून है। राम के परमप्रिय हनुमान के स्मरण मात्र से समस्त पापों का नाश हो जाता है। उनके चरणों में अनुराग होने पर दुर्भाग्य उसी तरह विलुप्त हो जाता है जैसे कि सूर्य के समक्ष अंधकार। रामदूत बजरंग बली का महात्म्य अनन्त है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि श्री हनुमंत शब्द–स्वर कार्य सिद्धि के लिए महामंत्र है। इसके जाप से बिगड़े काम भी बन जाते हैं, यह ऋषि–मुनियों के अनुभव का सार है। वैसे यह संसार दुखों का गृह अवश्य है, लेकिन इन दुखों के शमन के लिए ऐसे आश्रम की आवश्यकता होती है जो हर स्थिति में शांति व सुरक्षा का कवच दे सके। हनुमान का नाम जप एक सर्वोत्तम धारणीय कवच है। श्रीराम का नाम हनुमंत मंत्र का कवच है।

हनुमान जी ने सेवा का आदर्श प्रस्तुत किया, सेवा को धर्म बनाया। उन्होंने संसार के सामने युगों तक अक्षय रहने वाला संस्कार बनाया, जो जीव मात्र को आज भी आश्रय दे रहा है। यह संस्कार हर क्षण अद्भुत संदेश देता है कि सबके प्राणों के आधार वे प्रभु राम ही तो हैं।

(ग) जानकी मन्त्र प्रयोग

राम परब्रह्म हैं तथा सीता राम से अनन्य (अभिन्न) उनकी मायाशक्ति हैं। रामवल्लभा सीता शक्तिस्वरूपा हैं तथा जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और लय करने वाली और सम्पूर्ण कल्याणों की करने वाली हैं।

m)ofLFkfr lgkjdkfj.kh Dy'kgkfj.kheA
loJ;Ldjh lhrk urks·ga jkeoYyHkkeAA[1]

1 रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्ध प्रथम खण्ड, विश्राम दो0 1207, चौ0 1–8, पृ0 556–557

हिन्दू धर्मग्रन्थों में श्री जानकी का वर्णन विविध रूपों में पाया जाता है। श्री जानकी की अपार महिमा का दर्शन हमें इन पंक्तियों में होता है–

fcr ,d lg lHko lvk:A =; p=l dN nfj l/kk:AA
fnx ngyh lfgr tx vkjkA e/; iul tu vf=fd lkjkAA
etY ctY fcn lokjhA t=jkt fefFky l&dekjhAA
itb pnu vxj dijkA fexen dlfj jkf=;pjkAA
lgdchj tik lri=dA fcfYo; ry lh nck r=dAA
itu d: fl;&t=&f/kjktA tFkk U;k; flxkj lektAA
ti eu lgl rFkk/k cgkjhA e: cd gu lfi[k lHk ckjhAA
tik dle vFkok dchjkA fcfYo;ny line efu /khjkAA[2]

मैं सर्व कुशल दायिनी, भक्ति एवं मुक्ति को देने वाली सीता को नमन करता हूँ जो तीनों लोकों की जननी हैं, दुर्बुद्धि का नाश करने वाली हैं, जो विदेह राजा जनक की यज्ञ पुत्री हैं और अहंकारियों के अहंकार को चूर करने वाली हैं, और सद्भक्तों का भरण–पोषण करने वाली हैं–

txr lfDr nk;d fefFkylkA gkbl Lokgk gfj vej dy'kkA
Lo/kke;h firjUg l[knkuhA lkfr dkfr lrfLV HkokuhAA[3]

सीता राममय थीं। राम अपने गुणों के कारण ही सबकी प्रशंसा के पात्र है। अतः इनकी सेवा के लिए तो क्या कहना। रघुनाथ जी परम दयालु हैं, जितेन्द्रिय, दृढ़ अनुराग रखने वाले धर्मात्मा हैं–

ek r ij ,d j?kcj gbA dkju ek= u dkjt djbAA[4]

राम अनुरागी सीता बारम्बार कहती हैं– जनकनन्दिनी, मिथिलेशकुमारी के

---

1 रामचरितमानस, बालकाण्ड, मंगलाचरण, श्लोक–5
2 रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्ध प्रथम खण्ड, दो 1216, चौ0 1–8, पृ0 562
3 रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्ध प्रथम खण्ड, सो0 179, चौ0 5–6, पृ0 563
4 रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्ध प्रथम खण्ड, चौ0 8, पृ0 562

सद्गुणों, पातिव्रत्य धर्म, पति के प्रति अनुराग से प्रभावित होकर माता अनुसूया ने जानकी जी को अनेक उपहार आशीर्वाद के साथ दिया कि जैसे लक्ष्मी जी भगवान विष्णु की शोभा बढ़ाती है उसी तरह हे सीते! तुम दिव्य बनी हुई अपने पति राम को सुशोभित करोगी–

ufg lfDr r vfrjDr i#[k lfDr fHkUu u ekfu,A
ftfe cht vidj U;k; rfg fcf/k ,d/kk ifgpkfu,A
lrr fujrj jkefc|k c/kfcpkfj fugkfj,A
fc/kk cbLuo chFk}; gb ,d iofj fcpkfj,AA[1]

जानकी ने अपने आदर्श चरित्र का परिचय देते हुए कहा कि जिस प्रकार सूर्य से उसका तेज, उसकी प्रभा नहीं अलग की जा सकती उसी प्रकार मुझ सीता को भी राम से अलग मत समझो। मैं राममय हूँ राम से सर्वदा अभिन्न हूँ। सीता का पूरा चरित्र वन्दनीय है। अतः जानकी जी का स्वरूप, उनका शील स्वभाव मानव मन को प्रेरणा, सुख और शान्ति प्रदायक है। उनका चरित्र अनन्त काल तक सबके लिए आदर्श बना रहेगा।

(घ) मानसिक पूजा का वर्णन

साकार और निराकार दोनों ही की उपासनाओं में ध्यान सबसे आवश्यक और महत्वपूर्ण साधन है। श्री भगवान् ने गीता में ध्यान की बड़ी महिमा गायी है। योगशास्त्र में तो ध्यान का स्थान बहुत ऊँचा है ही, ध्यान के प्रकार भी बहुत से हैं। साधक को अपनी रुचि, भावना और अधिकार के अनुसार तथा अभ्यास की सुगमता देखकर किसी भी एक स्वरूप का ध्यान करना चाहिए।

कवि रूद्रप्रताप मानसिक पूजा वर्णन करते हुए कहते हैं–

ikr% lmp dfj /;ku lvpuA d: vjHk vLFky yf[k futuA
ukfHk&ljkcj r mnHkrkA jHkk dledkj lk lirkA

1 रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्ध प्रथम खण्ड, छंद 144, पृ0 565

cl| vkjh vfLuX/k euksgjA /;kob fgn; ine tx ukgjAA
fcdflr djb dey cj lkbA jfc lfl vuy fceMy tkbAA
eMy f=fHk jfcefMr tkbA ine dj fdtYd lk gkbAA
rkifj ikV jkf[k, lkbA fnC; jRu ifj mTToy tkbAA
rnifj /;kb jke Hkxokuk iHkkoku jfc dkfV lekukAA
uhynhcj&vkHk ljhjkA cM C;< fnx cPN l/khjkAA[1]

भगवान राम का आह्वान् करते हुए कवि कहते हैं–

vkckgu d: fcLo bl dA fcHk cYyHkru;k tul dAA
dmlY;k&unu tx 0;kidA ifØfr ij lht[ky&rkidAA[2]

आसन देते हुए कवि कहते हैं–

jRufl gklu vki dg nbv ;g j?kLokfeA
ybv iHk vklu ije yf[k viuh vuxkfeAA[3]

प्रसन्नीकरण करते हुए कवि कहते हैं–

gkg ilUu tkudh lkbA noLoj ilhn ekfg dkbAA
gkg ilUu ekfg g jktuA iu% ilUu egke/k xktuAA[4]

प्रभु की शरण में होने के लिए कवि प्रार्थना करता है–

lju gkm rEgj txrukFk lcRly HkDrA
gkg cjn e jktcj ng lju vujDrAA[5]

मधु अर्पित करते हुए कवि कहते हैं–

cklno ue rÙo lX;kuhA xgu djm e/kid cjkuhAA[1]

---

1 रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्ध प्रथम खण्ड दो0 1235, चौ0 1–8, पृ0 570
2 रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्ध प्रथम खण्ड, दो 1237, चौ0 6–7, पृ0 571
3 रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्ध प्रथम खण्ड, दो0 1237, पृ0 571
4 रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्ध प्रथम खण्ड, दो0 1238, चौ0 7–8, पृ0 572
5 रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्ध प्रथम खण्ड, दो0 1238, पृ0 572

प्रभु को जल से स्नान करते हुए कहते हैं–

cgekMknj e/; xr tr rhjFk j?kchjA
rfg dfj ugokf;r rEgfg xgu djg ju/khjAA[2]

कवि प्रभुराम से पीतांबर ग्रहन करने को कहता है–

/kok lku lk ;g ihrkcjA xgu djg tX;l fcLoHkjAA[3]

यज्ञोपवीत ग्रहण करने के लिए कवि कहता है–

cã l= mRrjh lk yk;dA /kkfjm jkekP;r e[kuk;dA
jk?ko j?kuk;d L=h/kkjdA xgu dfjv tu tl fcLrkjdAA[4]

धूप–दीप ग्रहण करने हेतु कवि प्रभु राम से प्रार्थना करता है–

ddde vxj ,u&en :jkA xgg jke pnu dijkAA
rylh dn lHkx enkjkA tkrh ixh pid ckjkAA[5]

मनुस्मृतिः में मानस जप की सर्वश्रेष्ठता बताते हुए कहा गया है कि–

fof/k;KkTti;Kk fof'k"Vk n'kfHkx.k%A
mik'k% L;kPNrx.k% lkglk ekul% Le'r%AA[6]

अर्थात् विधि–यज्ञों (अमावस्या तथा पूर्णिमा आदि तिथियों में किये जाने वाले यज्ञों) से जपयज्ञ (गायत्री अर्थात् प्रणवादिका जपरूप यज्ञ) दस गुना श्रेष्ठ है, उपांशु जप सौ गुना श्रेष्ठ है और मानस जप सहस्र गुना श्रेष्ठ है।

अतएव साधक को इधर–उधर मन न भटकाकर अपने इष्ट (राम) में महान आदर–बुद्धि रखते हुए परम भाव से उसी के ध्यान का अभ्यास करना चाहिए।

---

1 रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्ध प्रथम खण्ड, दो0 1239, चौ0 5, पृ0 573
2 रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्ध प्रथम खण्ड, दो0 1239, पृ0 573
3 रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्ध प्रथम खण्ड, दो0 1240, चौ0 1, पृ0 573
4 रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्ध, दो0 1240, चौ0 2–3, पृ0 573
5 रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्ध,, दो0 1240, चौ0 7–8, पृ0 573
6 मनुस्मृतिः अध्याय–2, श्लोक 85, द्वितीय संस्करण संवत् 2021, पृ0 57

इस प्रकार भगवान का ध्यान करता हुआ साधक भगवान के प्रेमानन्द में विभोर होकर कहता है– ध्यानावस्था में ही जब इतना बड़ा भारी आनन्द है, तब जिस समय आपके साक्षात् दर्शन होते हैं, वे पुरुष सर्वथा धन्य हैं। जिनको आपके दर्शन होते हैं, श्रद्धा होने पर उनके दर्शन से ही पापों का नाश हो जाता है, तब फिर आपके दर्शनों की तो बात ही क्या है। आप साक्षात् पूर्ण ब्रह्म परमात्मा है।

इस प्रकार श्रीराम का ध्यान, मानसिक पूजा, आरती, स्तुति प्रार्थना और गुणगान करना चाहिए।

(ङ) संध्या समय का कर्म

प्रत्येक मनुष्य के जीवन में कुछ क्षण ऐसे होते हैं, जब उसकी बुद्धि निर्मल और सात्विक रहती है तथा उन क्षणों में किये हुए कार्यकलाप (कर्म) शुभ कामनाओं से समन्वित एवं पुण्यवर्धन करने वाले होते हैं, पर सामान्यतः काम–क्रोध, लोभ–मोह, मद–मात्सर्य, ईर्ष्या–दम्भ, राग–द्वेष आदि दुर्गुणों के वशीभूत मानव का अधिकतर समय पापाचरण में ही व्यतीत हो पाता है, जिसे वह स्वयं भी नहीं समझ पाता। चौबीस घंटे के समय में यदि हमने एक घंटे का समय भगवदाराधन अथवा परोपकारादि शुभ कार्यों के निमित्त अर्पित किया तो शुभ कार्य का पुण्य हमें अवश्य प्राप्त होगा। पर साथ ही तेईस घंटे का जो समय हमने अवैध अर्थात् अशास्त्रीय (निषिद्ध) भोग–विलास में तथा उन भोग्य पदार्थों के साधन–संचय में लगाया तो उसका पाप भी अवश्य भोगना पड़ेगा। इसलिए जीवन का प्रत्येक क्षण भगवदाराधन के रूप में परिणत हो जाय– इसकी आवश्यकता है, जिससे मनुष्य अपने जीवनकाल में भगवत्संनिकटता प्राप्त कर सके और पूर्ण रूप से कल्याण का भागी बने।

इसीलिए वेद–शास्त्रों में प्रातःकाल जागरण से लेकर रात्रि–शमन तक तथा जन्म से लेकर मृत्यु–पर्यन्त सम्पूर्ण क्रिया–कलापों का विवेचन विधि–निषेध के

रूप में हुआ है, जो मनुष्य के कर्त्तव्याकर्त्तव्य और धर्माधर्म का निर्णय करता है।

इसलिए वेदादि समस्त शास्त्रों में नित्य और नैमित्तिक कर्मों को मानव के लिए परम धर्म और परम कर्त्तव्य कहा है।

गीता में भगवान ने स्वयं कहा है–

^Lodel.kk reH;P;l flf)l foUnfr ekuo%A*

इस पृथ्वी पर जितने भी स्वकर्म रहित द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) हैं, उनको पवित्र करने के लिए ब्रह्मा ने संध्या की उत्पत्ति की है। रात या दिन में जो भी अज्ञानवश विकर्म हो जायँ, वे त्रिकाल संध्या करने से नष्ट हो जाते हैं।[1]

सूर्य और तारों से रहित दिन–रात की संधि को तत्त्वदर्शी मुनियों ने संध्याकाल माना है।[2]

कवि रूद्र प्रताप ने संध्या समय का कर्म वर्णन करते हुए कहा–

vkfUgd e/; fnol dfg vk,A vej firj rk[ku fofu xk,A
vkgfr vfXugk= fcf/k xkokA eTtu euLlg tfDr y[kkokAA
Hkk tukfn tkor C;ogk:A dg gm jkejgL; lik:AA
nloky;&fcjpu mRlkgkA jkejgL; e/; fuckgkAA
pØ&xgu eu Lokfe; lokA dgm x# dy dj tl HkokAA
trh R;kT; fxfg dj lfr jk[khA r= cn nkÅ vl Hkk[khAA
fxgh R;kT; ufg doug HkkrhA xfgr trh tk cf) tekrhAA

1 नित्यकर्म–पूजा प्रकाश, गीताप्रेस, गोरखपुर संस्करण–57, पृ0 49
2 नित्यकर्म–पूजा प्रकाश, गीताप्रेस, गोरखपुर संस्करण–57, पृ0 50

t rh e= ufg dN Qynk;hA tm iuk vfHk[kd djkbAA[1]

श्राद्ध कर्म के महत्व के विषय में कवि कहता है–

l k)olku u tkor n[khA rkor t rh cnu ufg i[khAA
l k) vr Hkktu lg fiMkA f}t rft ufg tokb ik[kMkAA
l k)fnol tk t rh tokbA firj l vUukn; ufg ikbAA
vfrFkkxou gkb rfg dkykA f}t ifjl[k tokb; ckykAA[2]

द्विजत्वनिरूपण करते हुए कवि ने कहा है कि द्विज ही यज्ञ दीक्षाग्रहण में अधिकारी होता है–

f}t r mRre rÙo ufg ufg x#Ro tx ekfgAA
rk r tk fut tho tr ldy lo fgr ;kfgAA[3]

यज्ञोपवीत संस्कार के बिना द्विजकर्म का अनधिकार कहा गया है–

fl[kk l= fcu ufXur dk;kA ghu Øk/k v: iuj vnk;kAA[4]

मनुस्मृति में भी कहा गया है कि–

oni nkukpk;l firj ifjp{krA
u áfLeUt T;r de fdf´pnkekfUtcU/kukrAA

मनु आदि महर्षि वेदोपदेश करने के कारण आचार्य को पिता कहते हैं, क्यों कि इसे यज्ञोपवीत संस्कार के पहले किसी श्रौत तथा स्मार्त कर्म को करने का

1 रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्द्ध प्रथम खण्ड, दो0 1252, चौ0 1–8, पृ0 577
2 रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्द्ध प्रथम खण्ड, दो0 1256, चौ0 5–8, पृ0 579
3 रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्द्ध प्रथम खण्ड, दो0 1257, पृ0 580
4 रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्ध प्रथम खण्ड, दो0 1261, चौ0 1, पृ0 581

अधिकार नहीं।[1]

यज्ञोपवीत के पूर्व वेदमंत्रोच्चारण का निषेध–

ukfHk0;kgkj;n~ czã Lo/kkfuu;uknrA
'kn~.k fg leLrko|ko}n u tk;rAA

ब्राह्मणादि बिना यज्ञोपवीत संस्कार हुए श्राद्धकर्म के अतिरिक्त कर्म में वेदमंत्र का उच्चारण न करे; क्योंकि जब तक वेद में अधिकारी (यज्ञोपवीत संस्कार युक्त) नहीं होता, तब तक वह (द्विज) शूद्र के समान है।[2]

'जो द्विज संध्या नहीं जानता और संध्योपासन नहीं करता वह जीता हुआ ही शूद्र हो जाता है और मरने पर कुत्ते की योनि को प्राप्त होता है।'[3]

'संध्याहीन द्विज नित्य ही अपवित्र है और सम्पूर्ण धर्मकार्य करने में अयोग्य है। वह जो कुछ अन्य कर्म करता है उसका फल उसे नहीं मिलता।'[4]

'इस पृथ्वी पर निषिद्ध कर्म करने वाले जितने भी द्विज हैं, उन सबको पवित्र करने के लिए स्वयं ब्रह्माजी ने संध्या का निर्माण किया।'[5]

अतः जो व्यक्ति श्रद्धा–भक्ति से प्रतिदिन जीवनपर्यन्त यथाधिकार संध्याकर्म देवपूजन आदि नित्यकर्म करता है, उसकी बुद्धि आत्मनिष्ठ हो जाती है। आत्मनिष्ठ बुद्धि हो जाने पर शनैः–शनैः मनुष्य के बुद्धि की भ्रान्ति, जड़ता, विवेकहीनता, अहंकार, संकोच और भेद–भाव नष्ट हो जाता है, तब वह मनुष्य परमात्मचिन्तन में संलग्न होकर अहर्निश परब्रह्म परमेश्वर की प्राप्ति के लिए ही

---

1 मनुस्मृति, श्लोक 171, संस्करण द्वितीय 1965, पृ0 78
2 मनुस्मृति, श्लोक 172, संस्करण द्वितीय 1965, पृ0 78
3 संध्योपासनविधि और तर्पण एवं बलिवैश्वदेव–विधि संस्करण 19, गीताप्रेस गोरखपुर, पृ0 21
4 संध्योपासनविधि और तर्पण एवं बलिवैश्वदेव–विधि संस्करण 19, गीताप्रेस गोरखपुर पृ0 21
5 संध्योपासनविधि और तर्पण एवं बलिवैश्वदेव–विधि संस्करण 19, गीताप्रेस गोरखपुर, पृ0 22

प्रयत्न करता रहता है। इससे उसे परमानन्द की अनुभूति होने लगती है। परमानन्द की अनुभूति होने पर वह मनुष्य शनैः–शनैः दैवीगुणों से सम्पन्न होकर ईश्वरोन्मुख हो जाता है। ईश्वरोन्मुख होने के बाद मनुष्य को परमात्मा के वास्तविक तत्त्व का परिज्ञान होने लगता है और वह सदा–सर्वदा के लिए जीवन्मुक्त हो जाता है तथा 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' में परिनिष्ठित होकर आत्मोद्धार कर लेता है। यही मानव–जीवन की विशिष्ट सफलता है। इसलिए मानव जन्म को सफल करने के लिए मानव मात्र को संध्यासमय का कर्म नियमित रूप से करने चाहिए।

(च) अतिथिपूजन विधि

कवि रूद्र प्रताप अतिथिपूजन विधि का वर्णन करते हुए कहता है कि गृहस्थ का कर्त्तव्य है कि अपनी शक्ति के अनुसार अतिथियों का आसन, भोजन आदि से सत्कार करे–

iltu vfrfFk fultX; dgkÅA fxgh vfrfFk iltu lfr xkÅAA
fnu fnu f} tUg vUu Qy nbA ey lkd tkb vkilu lbAA[1]

कवि कहता है गृहस्थ को घर में शक्ति के अनुसार आसन, भोजन शैय्या, जल और मूल–फल से अतिथि की पूजा करनी चाहिए। अतिथि का अनादर करने वाले को अपार दुःख देता है–

vfrfFk vuknj nk[k vik:A fcyb tkfr lc e[k&0;ogk:A
vfrfFk vkm tk fxgh u lbA gfjr iU; ikrd fut nbAA[2]

कवि कहता है कि पाखण्डी, विरूद्ध कर्म करने वाले, शठ, हेतुवादी

---

1 रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्द्ध प्रथम खण्ड, दो0 1293, चौ0 1–2 पृ0 599
2 रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्द्ध प्रथम खण्ड, दो0 1305, चौ0 1–2 पृ0 607

अतिथियों का वचनमात्र से भी पूजन न करे।

गृहस्थ, राजा आदि को अतिथि सत्कार अवश्य करना चाहिए—

jktg xu dg efu cj HkkjA dhUgm pfgv vfrfFk lrdkjAA
f=nlkijnk lk efgikykA rfg u ikb in Hky fclkykAA
vfcHko&lnu ujLoj vkÅA i tu vfrfFk yf[k tFkk iHkkÅAA
mPpkoPp fcpkj u dkbA vfrfFk dky xr bLoj lkbAA
cLono&fØr ikrd tkbA U;ufrfjDr de Hkb lkbAA[1]

वैश्वदेव कर्म के निवृत्त होने पर यदि दूसरा अतिथि आ जाय तो उसके लिए भी यथाशक्ति अन्न देना चाहिए।

अतः ब्रह्मचारी सन्यासी, स्नातक और क्षोत्रिय गृहाश्रमियों की पूजा कर इसके प्रभाव से लाभान्वित होना चाहिए।

(छ) भोजन विधि

भोजन विधि का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

dfggm vc Hkktu C;ogkjA ikd mDr gb tFkk idkjAA
tk =; l/;k cnfugkjA v: f=dky eTtu djrkjAA
lLukRok l/;k d: lkbA rnifj ifu Hkktu fcf/k gkbAA
l/;k eTtu ghu i#[k tkA dfj lfp Hkktu djb vofl lkAA[2]

हितकर अन्न को आयु के लिए पूर्व की ओर यश के लिए दक्षिण की ओर धन के लिए पश्चिम की ओर और सत्य के लिए उत्तर की ओर मुखकर भोजन

---

1 रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्द्ध प्रथम खण्ड, दो0 1310, चौ0 1—5, पृ0 610

2 रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्द्ध प्रथम खण्ड, दो0 1312,चौ0 2—5, पृ0 611

करना चाहिए।

कवि कहता है कि द्विज को सायं–प्रातः भोजन करना चाहिए। बीच में भोजन नहीं करना चाहिए। यह विधि अग्निहोत्र के समान है। कवि ने भोजन के आदि–अन्त में आचमन–विधान पर भी बल दिया है। वह यह भी कहता है कि सदैव श्रद्धा से अन्न–भोजन ग्रहण करना चाहिए।

ब्राह्मण, साध्वी, रोगी और गर्भिणी स्त्री, वृद्धा–इन्हें अतिथियों के पहले बिना विचारे भोजन करावे–

cìkãukfn vuipjUg [kokbìA vlu lnìifr fxìgh lkgkbìAA
lk/oh jkfxfu xìfcìfu tkbìA fcì)kFkok ckyxu gkbìAA
lìfLØrkUu rìfg iìFke tìokìbìA vxìxU; fxìfg ikNì [kkbìAA[1]

जो गृहस्थ इन को भोजन नहीं देकर भोजन के क्रमविरोध दोष को नहीं जानता हुआ पहले भोजन करता है, वह दरिद्र हो जाता है। अतिथि ब्राह्मण, स्वजातीय भृत्य (दास, दासी) के भोजन कर लेने पर बाद में शेष अन्न को गृहस्थ दम्पति भोजन करें। देवताओं, ऋषियों, मनुष्यों, पितरों, गृहस्थित शालग्रामादि प्रतिमाओं की पूजा कर गृहस्थ शेष बचे हुए अन्न को भोजन करे।

कवि ने केवल अपनें लिए भोजन बनाने का निषेध बताया है। जो केवल अपने लिए भोजन पाक करता है, वह पाप को भोगता है क्योंकि यज्ञ (पंचयज्ञ) से बचा हुआ अन्न सज्जनों का अन्न कहा गया है।

(ज) शयन विधि

शयन विधि वर्णन करते हुए कवि कहता है–

l;u iìdkj dgr brb lìlrk lìfp C;ogkjA
eìxy fgr ?kj iìuìty jk[kb l;ukxkjAA[1]

1 रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्द्ध प्रथम खण्ड, दो0 1313,चौ0 1–3, पृ0 611

रात्रि में शयन पूर्व हरि का स्मरण अवश्य करना चाहिए–

jkf= l|Ir i< gfj vfHkcinhA bLV Leju djb vkuinhA[2]

दक्षिण दिशा ओर सिर करके सोना चाहिए–

lkfc=h i<| lTtk FkkbA nfPNu fljk lkm l|[k lkbAA[3]

उत्तर की ओर सिर करके कदापि नहीं सोना चाहिए–

mRrj flj dnkfi ugh| dhtA dht| tm| fclf[k ru| NhtAA[4]

अन्न, गुरु, गाय, ब्राह्मण के शयन स्थान पर बैठने, शयन का निषेध कवि ने बताया है–

fcu| lTtk v# xr| eg| l;u mfpr ufg| gkbA
vUu x# v# /ku| f}t mij l;u ufg| tkbAA[5]

गुरु, माता, पिता आदि पूज्यजनों की शय्या और आसन पर स्वयं न बैठें। देवालय के ऊपर भी शयन नहीं करना चाहिए–

noky; Åij ufg| lkbA vxgh u [kVog| ufg| tkbAA[6]

कवि रूद्र प्रताप ने अपने निजी मत के अनुसार सबको शयन व्यवस्था के बारे में अवगत कराया–

vkfUgd C;oLFkk /ke| fuu|; /ke| dj ftfe xk,ÅA

---

1 रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्द्ध प्रथम खण्ड, दो0 1357, पृ0 631
2 रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्द्ध प्रथम खण्ड, दो0 1358, चौ0 2, पृ0 632
3 रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्द्ध प्रथम खण्ड, दो0 1358, चौ0 7, पृ0 632
4 रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्द्ध प्रथम खण्ड,, दो0 1359, चौ0 1, पृ0 632
5 रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्द्ध प्रथम खण्ड, दो0 1360, पृ0 633
6 रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्द्ध प्रथम खण्ड, दो0 1361, चौ0 1, पृ0 633

fut efr fcfgr dk:[k :niirki lcfg luk,ÅAA
vYgkn dj iYgkn vuxe lknu ij er jrkAA
/kU; /kke /kjklry cj /ke v/ok dh yrkAA[1]

इस प्रकार कवि द्वारा दिये गये उपदेशों का विधान तथा निषेध शास्त्र सम्मत है।

(झ) वैश्य और शूद्रों का धर्म

कवि कहता है कि मैने वैश्यों और शूद्रों का धर्मशास्त्रों के अनुसार लिखा है–

,fg fclke dgm fi;; cL;d lnd /keA
tFkk /ke lkL=Ug fy[kh rFkk Hkum rfg deAA[2]

वैश्य व्यापार, ब्याज (सूद) की जीविका, खेती तथा पशुपालन करे–

ykHk: C;; d: ej u [kkbA ifj[k jRu Ø; fcØ; dkbAA
xkjPNu v: fØ[kh ldk:A vUu iVkfnd trob ik:AA
fØeh dldh ,PNd ukukA cp nk: Qy Qy i[kkukAA
ey vm[k/kh i= l[kkjkA yk[ku ykfn djfg cbikjkAA
ttuk/;u rFkk ifu nkukA de=; ek Hkt tl ekukAA
/ke de ;g cL; c[kkuhA =;/kk fØR; cbL;d tkuhAA[3]

जीविका से दुःखित वैश्य को खेती, गोपालन करके अपने वैश्य धर्म का पालन करना चाहिए।

इस प्रकार शूद्रों से दास कर्म कराने का भी विधान कवि ने बताया है–

lnz /ke v# de fcl[khA lou cu =;h dj n[khAA

---

1 रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्द्ध प्रथम खण्ड, छंद 154, पृ0 634
2 रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्द्ध प्रथम खण्ड, दो0 1421, पृ0 663
3 रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्द्ध प्रथम खण्ड, दो0 1422, चौ0 1–6, पृ0 663

thou vur fcir tkb lokA doy /kel nkl ;g nokAA
mi thou yfx dkgfg lÅA lok rfg C;kikj fcHkÅA
tk fcu ykg lm efgikykA Nf=m lnr no lfclkykAA[1]

मनुस्मृति के अनुसार—

'kn r dkj;nnkH;l ØhreØhreo okA
nkL;k;o fg l"Vk·lk ckã.kL; Lo;l HkokAA[2]

किन्तु वेतन देकर या नहीं देकर (जैसा वे चाहें वैसा करके) शूद्र से दास कर्म को करावे, क्योंकि ब्रह्मा ने ब्राह्मणों की सेवा के लिए ही शूद्रों की सृष्टि की है।

कवि के अनुसार शूद्रों का परम धर्म है—

,fg idkj frfFk voxu n[khA f}t lok fof/k nhUg fclsl[khAA
rkel tfur leLr fcdkjkA f}t lou rs rkr U;kjkAA
lb no ckãu&in&idtA lb ikIr pjut fonfg HktAA
ije /kel ;g ln lquk,A f}t&lou rq vf/kd u xk,AA[3]

शूद्र स्वर्ग तथा जीविका दोनों के लिए ब्राह्मण की सेवा करे। 'यह ब्राह्मणाश्रित है' इतने से शूद्र कृतकृत्य हो जाता है। ब्राह्मणों की सेवा करना ही शूद्रों का मुख्य कर्म कहा गया है, इसके अतिरिक्त वह शूद्र कुछ करता है, उसका कर्म निष्फल हो जाता है।

अतः वैश्य तथा शूद्र यत्नपूर्वक अपने—अपने कर्मों को करते रहे, क्योंकि अपने—अपने कर्म से भ्रष्ट ये दोनों इस संसार को क्षुभित कर देंगे।

---

1 रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्द्ध प्रथम खण्ड, दो0 1425, चौ0 5—8, पृ0 665
2 मनुस्मृति, अध्याय 8, श्लोक—413, पृ0 476, संस्करण द्वितीय
3 रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्द्ध प्रथम खण्ड, दो0 1427, चौ0 1—4, पृ0 666

इस प्रकार कवि कहता है कि मैने वैश्यों तथा शूद्रों के लिए आपत्तिकाल के इस धर्म को कहा, इसका यथायोग्य पालन करते हुए वे श्रेष्ठ गति को प्राप्त करते हैं।

(ञ) गंगा का माहात्म्य

गंगा की जीवन–कथा निरन्तर प्रवाह की कथा है। हर कलुष को अपने में समेट कर उज्ज्वल करते जाने की अपराजेय गाथा है। आज भी भारतवर्ष का प्राण है। गंगा से हमारे देश ने काया पायी है। अचल–अटल हिमालय ने हमें ध्यान की दीक्षा दी है और माँ गंगा ने प्रेम और सेवा का पाठ पढ़ाया है।

गंगा एक जलधारा नहीं– एक चिंतन का नाम है। आदिकाल से ही मनीषी, दार्शनिक, साहित्यिक जनविशेष से लेकर जनसाधारण तक के मानस में गंगा सदा व्याप्त रही है। वेदों से लेकर वेदव्यास तक, वाल्मीकि से लेकर आधुनिक कवि तक सभी की लेखनी गंगा महिमावलेखन के लिए अविरल प्रवाहमान रही है। 'हमारे देश का कोई भी ऐसा कवि, विचारक या लेखक नहीं है जो गंगा के माहात्म्य से प्रभावित न रहा हो। चाहे वाल्मीकि रहे हों या कालिदास, शंकराचार्य हों या वल्लभाचार्य, महात्मा तुलसीदास हो या रहीम–रसखान। पंडितराज जगन्नाथ की 'गंगा लहरी' आज भी भारत के जनमानस में गूँजती रहती है।'[1]

कवि रूद्र प्रताप ने लिखा है कि गंगा में स्नान करने से सभी जन्मों के पाप हर जाते हैं–

xix&rjix vuix eukgjA ldy&no&lfcr fr; ldjAA
lk leniRuh cj n[kkA lrtUek v?k feVfg fcls[kkAA
fr;s tUe nb lrg ds fdfYc[k tkr fcykbA
ftfe mnkr fnudj fd, jtuh&re nfj tkbAA

---

1 पतितपावनी–गंगा, डा0 गिरिजा शंकर त्रिवेदी, मानस संगम, संस्करण, 2006, पृ0 90

ldy tUe&ikrd gjr xxk fØr vLukuA
tFkk X;ku v/;kl r fcy; gkr vX;kuAA[1]

इस प्रकार भारतीय वाङ्मय ही नहीं विश्व वाङ्मय भी गंगा की गौरवगाथा से परिपूर्ण है। जहाँ तुलसीदास जी इसे सर्वपापनाशिनी जगद्धात्री मानकर–^xxx ldy en exy eyk] lc l[k djfu gjfu lc lyk* कहते हैं। वहीं इतिहास मनीषी पं0 नेहरू, गंगा को भारत की जीवन–धारा मानते हुए कहते हैं कि 'गंगा भारत की राष्ट्रीय सरिता है। इसने सभ्यता के प्रारम्भिक काल से लेकर आज तक भारत की आत्मा को अपने से बाँध रखा है तथा कोटि कोटि जनों को सदैव अपने तटों की ओर आकर्षित किया है। उद्गम से सागर तक, अतीत से वर्तमान तक गंगा की गाथा–भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति; साम्राज्यों के उत्थान तथा पतन; महान गौरवशाली नगरों; मानव के साहसिक अभियानों; भारतीय विचारकों के मन की उड़ान, जीवन की समृद्धि तथा त्याग; उद्भव तथा पराभव और जीवन तथा मृत्यु की गाथा है।'[2]

गंगा के सनातन प्रवाह में भारतीय इतिहास प्रवाहित होता है। गंगा के तट पर बड़े–बड़े नगर, राज्य, साम्राज्य, इतिहास, ज्ञान, साधना सभी जागृत हुए हैं। गंगा ने मानव को मिलाया है। गंगा की धारा पकड़े हुए समुद्र में बढ़ते जाइये तो सारे विश्व से आपका संबंध स्थापित हो जायेगा। इसीलिए गंगा परम मुक्तिदात्री है। जितने मुख्य तीर्थ हैं, देवालय हैं, आश्रम हैं, इसी के तट पर ही तो हैं–

d:PN= le lnbo xxkA t= d= lfjrk lrjxkAA
dg xx lHk vknd rjA fif= no vpu d: tjAA
rk d firj ekPNin ikofgA lr tu jke x;k dfj vkofgAA
ljUg rfLV dfg Hkkfr Ug gkbA fc[k lcf/kg tk ufg

---

1 रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्ध प्रथम खण्ड, दो0 1536–1537, चौ0 7–8, पृ0 721

2 सम्पादकीय, सन्मार्ग : गंगा विशेषांक : 1983

tkbAA

xxk&ty&du lpfg tkbA rjyfg fcLu ykd rfg gkbAA[1]

कवि कहता है जिनके पुत्र गया करते हैं उनके पितृ मोक्ष को प्राप्त होते हैं। उनकी महिमा है कि वे सबको पवित्र करती हैं। इसीलिए उन्हें पतितपावनी कहते हैं। कितनी ही मलिन धारा क्यों न हो, गंगा में मिलकर पवित्र हो जाती है। कैसा अपूर्व प्रेम है इस गंगा का। पितृ–गृह हिमालय में उसमें जैसी शीतलता थी, वैसी ही निर्मलता भी थी। पर उसने अपनी अधम संतानों के प्रेम में पड़कर उनका सारा ताप, सारा मालिन्य अंगीकार किया और उन्हें निर्मल बनाया। गंगा स्मरन से मनुष्य के सारे पाप हर जाते हैं–

xxk&Leju djfg uj tkbA rf"V iLkn vey lkb gkbAA

fge&ufnuh cfnuh ykdkA gjuh ikp Hkr Hko lkdkAA

tk vHkC; dg HkC;fg nhUgkA vflofg flo ejfr ftUg yhUgkAA

dkju lkb cbjfp cljhA yb vkor rg tu ?kugjhAA[2]

गंगा एक जड़ नदी नहीं वरन् सतत् प्रवाहमयी चैतन्य धारा है। शास्त्रों में गंगा को शुद्ध विद्यास्वरूपा; इच्छा, ज्ञान एवम् क्रिया रूप–तीन शक्तियों वाली, दयामयी, आनन्दामृतस्वरूपा तथा शुद्ध धर्मस्वरूपा कहा गया है। पुराणों में गंगा के दर्शन, आचमन, स्नान आदि का विस्तार से वर्णन मिलता है। प्रायः पूजा–अर्चना के समय संपूर्ण भारत के पर्वतों और नदियों के नामों का एक साथ स्मरण किया जाता है।

गंगा के व्याख्यान को सुनने से पुत्रहीन को पुत्र की प्राप्ति होती है। वैश्य

---

1 रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्ध प्रथम खण्ड, दो0 1538, चौ0 1–5, पृ0 721

2 रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्ध प्रथम खण्ड दो0 1542, चौ0 5–8, पृ0 723

महाधनवान हो जाता है। ब्राह्मण तर जाते हैं और शूद्रों की समस्त मनकामना पूर्ण होती है–

xxk x, lgl lj /kkokA vkx gfjtl py u pykokAA
rfg xxk j?kchj&ilÅA tk r dhfr yg lc nÅA
;g rhjFk dy ldy fu:ikA tFkk lefr dhjfr vu:ikAA
lu tk ;g rhjFk 0;k[;kukA gkfg vi=g dg lr ukukAA
v/kuh txr&lB in ikÅA /kjuh fct; ygfg cg jkÅAA
lou cbL; egk/ku ikofgA fc|klfj ckãu rfj tkofgAA
ln ygfg leLr eudkekA tk vdj rk d mj tkekAA
tk cb iki dj vf/kdkjhA rfg u rhFk lc ijfg fugkjhAA[1]

इस प्रकार गंगा वस्तुतः लोकमाता और विश्वपावनी है। इसका आश्रय लेकर मानव भौतिक उन्नति ही नहीं अपितु मानवता को उपकृत करने के लिए आध्यात्मिक उन्नति भी कर सकता है। गंगा एक सहज स्वस्थ और उदात्त जीवन–प्रवाह का पर्याय है। उसके पावन प्रवाह में चरवेति निश्चय ही वह हमारी भारतीय संस्कृति और संस्कारों की आचार संहिता का प्रतीक है।

¼ट½ *विभिन्न माह व्रत निर्णय*

देव–कर्म या पैतृक–कर्म काल के आधार पर ही सम्पन्न होते हैं और कर्म भी नियत समय पर किये जाने पर पूर्णरूपेण फलप्रद होते हैं। समय के बिना की गयी क्रियाओं का फल तीनों कालों तथा लोकों में भी प्राप्त नहीं होता।

कवि कहते हैं कि आश्विन, कार्तिक, माघ और चैत्र इन महीनों में स्नान, दान और भगवान शिव तथा विष्णु का पूजन दस गुना फलप्रद होता है।

---

1 रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्ध प्रथम खण्ड, दो0 1543, चौ0 1–8, पृ0 723–724

चैत्रमास के व्रत निर्णय करते हुए कवि कहता है–

,fg eklkik[;ku ek| or l|te vLukuA
dfgv fØR; i|fr frfFkUg dk ftfe d: i|c|t xkuAA
p|= vkfn i|frink ng dfj QkYxu volkuA
dgm ykdifr e|fnr ftfe l|um C;ky HkxokuAA
,fg fclke dgm| fi|;| e/k| ek/kc C;k[;kuA
c|r vijm fØr ic| tk dfjgm| ldy c[kkuAA[1]

राम अवतार का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि–

p|= l|Dy uoeh c|rHkkjkA tk fnu yhUg jke vorkjkAA
c|r vp|u fc/kku i|j xkbA jke jgL;&e/; l|u| HkkbAA[2]

वैशाख शुक्ल पक्ष की तृतीया में गंगा जी में स्नान करने वाला सब पापों से मुक्त हो जाता है–

i|Ttrjk xxk cjk r fnu vrho i|HkkmA
tk eTtb xxk&lfjr eu| Hkfj vCn ugkmAA[3]

वैशाख मास की तृतीया स्वाती नक्षत्र में जो भी दान दिया जाता है, वह अक्षय होता है–

/koy f=rh;k jk/kk tkuhA vPN;k[; lk fcfnr HkokuhAA
lc|&de|&vPN;&nkrkjhA lkfi mRrjk xká fcpkjhAA
xmjh&c|r vk[;kr efg xká mRrjk rhftA
j|Hkkc|r cft|r cg|fj f=fr;k mRrj HkhftAA[4]

वैशाख में विशेष रूप से हविष्यान्न देने से अधिक लाभ होता है–

i|fu| ek/ko Qyn cg| fcf/k ikr eTtu nku dA

1 रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्ध प्रथम खण्ड, दो0 1724–1726, पृ0 814
2 रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्ध प्रथम खण्ड, दो0 1735, चौ0 7–8, पृ0 817
3 रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्ध प्रथम खण्ड, दो0 1739, पृ0 819
4 रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्ध प्रथम खण्ड, दो0 1738, चौ0 7–8, पृ0 818

gou i|tu rFkk Hkk|tu fcfc/k Hkk|fr f}tku d|AA
lE;d l|eTtu i|kr dfj cbl[k fci| [kokbgfg|AA
nl i|p ck ck llr cyor lk i|jh gfj tkbgfg|AA[1]

ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्ष की दशमी गंगा दशहरा कहलाती है।

महान व्रत सावित्री, व्रत के बारे में कवि कहता है–

T;|LBh tkb egku c|r lkfc=h c|r lkbA
cV&i|tu vLukut|r lk|fp Hkfj ty tkbAA
l|=kc|LVu djfg| lk lR; ifrc|r ukfjA
dfg&dfg cboLoru eu| v|r pr|Fkh| dkfjAA[2]

आषाढ़ी–व्रत विधि वर्णन करते हुए कवि कहता है–

vk[kk<h&c|r fcf/k vkj|HkkA pkr|ekL; c|Ug vLr|HkkAA
djfg| i|U;fcn tk uj ukj|hA ygfg| vrho /ke| vf/kdkj|hAA[3]

कवि कहता है कि अशून्य–शयन द्वितीया (श्रावण मास के कृष्ण पक्ष की द्वितीया तिथि) को गन्ध, पुष्प, वस्त्र तथा विविध नैवेद्यों से भगवान् लक्ष्मीनारायण की पूजा करनी चाहिए–

lkou fØLu f}rh;k tkb|A c|r vl|U; l;uk[;k lkb|AA
p|nkn; C;kfiuh lk dktkA ygfg| t;kRre c|r r| Hkktk|AA[4]

श्रावण मास के शुक्ल पक्ष की पंचमी में द्वार–देश के दोनों ओर गोमय से नागों की रचना कर दूध, दही, सिन्दूर, चन्दन, गंगाजल एवं सुगन्धित द्रव्यों से

---

1 रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्ध प्रथम खण्ड, छंद 245, पृ0 820
2 रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्ध प्रथम खण्ड, दो0 1744–1745, पृ0 822
3 रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्ध प्रथम खण्ड, सो0 231, चौ0 1–2, पृ0 823
4 रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्ध प्रथम खण्ड, दो0 1754, चौ0 1–2, पृ0 825

नागों का पूजन करना चाहिए। नागों का पूजन करने वालों के कुल में निर्भयता रहती है एवं प्राणों की रक्षा होती है–

/koy ipeh ukx dgkobA }kj dPN nkm lsl iwtkobAA
xke; jfpr ukxci dkjhA nf/k i; ncs dlkdj ckjhAA
x/k iLi xke; vfg vikA lE;d ifu ckãuUg lrikAA
rfg fnu ift rLV vfg gkbA lcRlj vfgHk; ufg dkbAA

;g jm[k dYikfn gb ipfe fclr ukxA
rfg voL; dj ift, ukx lfgr vujkxAA[1]

रक्षा बंधन के संबंध में कवि का कहना है–

ifu lkouh ljPNk&c/kuA l) dky gb Hkk[km efuxuAA[2]

भाद्रपद की षष्ठी में स्नान, दान आदि करने से अनन्त पुण्य होता है–

Hkknw&fØLu&[kLBh lHkkcr nifr djrkjA
vfHkyk[kh lrfr vut Hkkstu djb vikjAA[3]

कवि कहता है कि हरितालिका व्रत करने से शिव समान पति की प्राप्ति होती है–

lYd Hkknw lf=rh;k tkbA gfjrkfydk [;kr efg lkbAA
tfg cr dfj icfg ldek:A fxfjru;b yfg gj Hkjrk:AA
ijk xká lk tkor gkbA jHkk cftr tkuo lkbAA
;g eUokfn dYi dgokÅA dfj crfxfjtb gjifr

---

1 रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्ध प्रथम खण्ड, दो0 1755, चौ0 5–8, पृ0 826
2 रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्ध, प्रथम खण्ड, दो0 1759, चौ0 8, पृ0 828
3 रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्ध, प्रथम खण्ड, दो0 1761, पृ0 829

ikÅAA[1]

श्रावण और भाद्रपद व्रत विधान सुनाने के पश्चात् कवि कहता है–

l kou Hkkn fØR; c r xkokA t Fkk i kd /keUg eg i kokAA
c r fc/kku ;g fcfnr l uk,A c[kkR;kfx l jn eg vk,AA[2]

आश्विन एवं कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष की अष्टमी में अष्टादशभुजा का पूजन करना चाहिए। कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष की दशमी को शुद्ध आहारपूर्वक रहने वाले ब्रह्मलोक में जाते हैं। आश्विन की दशमी विजया और कार्तिक की दशमी महापुण्या कहलाती है। इस प्रकार इन दोनों माह में दान, व्रत, स्नान आदि का बहुत महत्व है–

vkfLou dkfrd dhfr nkm dhUg tFkkefr nkuA
c r&fuu; v: ic l g l fgr Åt vLukuAA[3]

कवि कहता है–

ekx l h[k v: im[k c r dfggm ,fg fc l keA
djrkjUg dk iU; t l cgfj c rUg dk ukeAA[4]

अगहन और पौष मास के सभी व्रत तिथियों को कवि शुभ कहते हैं–

ekxu l dy c r frfFk l fufu; dYi l g eUokfnA
dk:[kh :n i rki vxgu im[k l Hk c rckfnAA
dgm ukuk er fcykfd equhUg dk l enkbA
v: i jku l cn l kjfg tFk jke l xkbAA[5]

कवि माघ माह व्रत का विशेष फल होने से इसकी विधि का वर्णन कर रहा है– जिसके हाथ, पाँव, वाणी, मन अच्छी तरह संयत हैं और जो विद्या, तप,

1 रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्ध प्रथम खण्ड, सो0 233, चौ0 4–7, पृ0 831–832
2 रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्ध प्रथम खण्ड, छंद, 252, चौ0 6–7, पृ0 834
3 रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्ध प्रथम खण्ड, दो0 1848, पृ0 868
4 रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्ध, दो0 1849, पृ0 869
5 रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्ध प्रथम खण्ड, छंद 272, पृ0 877

तथा कीर्ति से समन्वित हैं, उन्हें ही तीर्थ, स्नान–दान आदि पुण्य कर्मों का फल प्राप्त होता है–

vfr i.lLr frfFk =; fen| xkrkA Luku nku djrk yg| lkrkAA
vofl dhUg pkfgv vLukukAA en|t|r nb f}tkfrUg nkukAA[1]

माघ स्नान के व्रत करने वाले व्रती को चाहिए कि वह सन्यासी की भाँति संयम–नियम से रहे, दुष्टों का साथ नहीं करे। इस प्रकार के नियमों का दृढ़ता से पालन करे से सूर्य–चन्द्र के समान उत्तम ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है।

फाल्गुन मास के कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी शिवरात्रि के नाम से प्रसिद्ध है–

flojkf=c.rjr uj tkbA rkfg egke[k dj Qy gkbAA
i.tb ckeno mickl hA vLVtke tkx. l|[kjklhAA[2]

शिवरात्रि व्रत सम्पूर्ण अभिलाषाओं की पूर्ति करने वाली है–

;g c.r dj egku Qy tkbA fy.xkp.up.fn.dk fctkbAA
c.ãkRrj cg| Hkk|fr c[kkuhA dhUg jke gbg;&en HkkuhAA[3]

इस दिन चारों पहरों में स्नान करके भक्तिपूर्वक शिवजी की आराधना करनी चाहिए–

;g flojkf=&c.r dj jkouA Hk,m vej&d|y dj fcuklkouAA
;g d"kfn&c.r d: flrc.:A uj r| Hk,m l|jUg eg| e.:AA
i|jk n;R;Ur ;g c.r dhUgkA l|jifr dj inch lc

1 रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्ध प्रथम खण्ड, दो0 1883, चौ0 5–6, पृ0 884
2 रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्ध प्रथम खण्ड, दो0 1888, चौ0 1–2, पृ0 886
3 रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्ध प्रथम खण्ड, दो0 1889, चौ0 1–2, पृ0 886

NhukAA

dfj cr ;g xmre efujkbA l|lkuh ckgeuh ygkbAA[1]

नैमिषारण्य में महाफाल्गुनी पूर्णिमा विशेष फल देने वाली है। इस पर्व में जो भी शुभाशुभ कर्म किये जाते हैं, वे अक्षय हो जाते हैं।

कवि कहता है कि मैने जो नरकों का विस्तार से वर्णन किया है, उन्हें व्रत–उपवास रूपी नौका से मनुष्य पार कर सकता है। जिस मनुष्य की कीर्ति, दान, व्रत, उपवास आदि की परम्परा बनी है, वह परलोक में उन्हीं कर्मों के द्वारा सुख भोगता है। व्रत न करने वाले की कहीं भी गति नहीं है। इसके विपरीत व्रत स्वाध्याय करने वाले पुरुष सदा सुखी रहते हैं।

इस प्रकार दृढ़व्रती पुरुष के लिये राजलक्ष्मी, बैकुण्ठलोक, मनोवांछित फल आदि दुर्लभ पदार्थ भी जगत् में सुलभ है। इसलिए सदा सत्यपरायण पुरुष को व्रत में संलग्न रहना चाहिए।

(ठ) मलमास वर्णन

जिस महीने में पूर्णिमा का योग न हो, वह प्रजा, पशु आदि के लिए अहितकर होता है। सूर्य और चन्द्रमा दोनों नित्य तिथि का भोग करते हैं।

जिन तीस दिनों में संक्रमण न हो, वह मलिक्लुच, मलमास या अधिक मास (पुरुषोत्तम मास) कहलाता है, उसमें सूर्य की कोई संक्रान्ति नहीं होती।'[2]

कवि मलमास विधान वर्णन करते हुए कहता है–

dfj eyekl lfu;e l|tkukA fcLu|:i lglkl| egkukAA
i|tb lfcf/k lfgr ifjokjkA jfc i|t| iftr lhnkjkAA

---

1 रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्ध प्रथम खण्ड, दो0 1889, चौ0 3–6, पृ0 886–887

2 संक्षिप्त भविष्यपुराण, गीता प्रेस, गोरखपुर, पृ0 245–246

ekl Ug d ey r eyekl A ey r ey lHko gj vklAA[1]

प्रायः अढ़ाई वर्ष (बत्तीस मास) के बाद यह मास आता है। इसमें तीर्थ स्नान, देव–दर्शन, व्रत उपवास आदि किया जा सकता है–

fcLu : ie; vle; djg iki ee nfjA
;g iikUu inku r v?k vilCnd lfjAA
mn; bnle dfyr cj yfyr vey ;g iiA
lc noUg dk HkPN re d : ekfg exy : iAA[2]

मलमास माह में दान–पुण्य का बहुत महत्व है–

ivk lufgr dkL;ik= /kfjAdN fgjU; v : vkT; ltr dfjAA
ngv f}t n;ky lHk nkekA ukjk;.k tx cht l/kkekAA
gkb n;ky ;g efycr rjA nht ekfg /ku/kkU; ?kujAA
vf/kekl }knlh vFk ifu y[kh 0;frikrA
nht nku f}tkfr dg gju ldy mrikrAA[3]

इस महीने में सभी तरह की प्रेत–क्रियाएँ तथा सपिण्डन–क्रियाएँ की जा सकती हैं। परन्तु यज्ञ, विवाहादि, कार्य नहीं होते। राज्याभिषेक मलमास में हो सकता है। प्रतिष्ठा, चूडाकर्म, उपनयन, मंत्रोपासना, विवाह, नूतन–गृह–निर्माण, गृह–प्रवेश, गौ आदि का ग्रहण, आश्रमान्तर में प्रवेश, अभिषेक–कर्म, यज्ञ–यागादि इन सबका मलमास में निषेध है। गुरु के अस्त एवं सूर्य के सिंह राशि में स्थित होने पर अधिक मास में जो निषिद्ध कर्म हैं, उन्हें नहीं करना चाहिए।

(ड) एकादशी माहात्म्य

कवि रुद्रप्रताप एकादशी व्रत माहात्म्य का वर्णन करते हुए कहते हैं कि

1 रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्ध प्रथम खण्ड, दो0 1916, चौ0 1–3, पृ0 902
2 रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्ध प्रथम खण्ड, दो0 1916–1917, पृ0 902
3 रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्ध प्रथम खण्ड, दो0 1918, चौ0 5–7, पृ0 902–903

एक वर्ष में बारह महीनों की चौबीस अथवा जिस वर्ष में अधिक मास होता है उसकी दो मिलाकर कुल छब्बीस एकादशियां होती हैं। इनके उच्चारण मात्र से बहुत से पाप नाश को प्राप्त हो जाते हैं। इनके श्रवणमात्र से इनके नामों के अनुकूल ही फल प्राप्त होता है। जो प्राणी इनका व्रत नहीं कर सकते वे इनका नाम सुनने मात्र से ही व्रत का फल प्राप्त कर सकते हैं–

lkjn cr cuu dfj vkbA /ke /kj/kj tFkk lukbAA
, cr jr lr fur uj tkbA Lox icx ikIr lkb gkbAA
/kU; /kke /kjuh /ku i#[kA fu;e LoLFk ikofg lj ij l[kAA
cr fuu; leLr dfj vk,A vorkjm ,dkfl luk,AA[1]

कवि मार्गशीष कृष्णा एकादशी व्रत कथा का वर्णन करते हुए कहता है–

ekx vflr ,dknfl tkbA mRifRrdk dgkor lkbAA
cr tkxj itu Hkxokua fuR; xku jtuh vo lkuAA
fcf/kor crjr tk ujukjhA clfg liug ot cj lkjhAA[2]

कवि कहता है कि एकादशी व्रत का फल सर्वश्रेष्ठ है। एकादशी व्रत करने वाले को भगवान् श्रीकृष्ण मोक्ष पद देते हैं–

lk lkehl; ekPN nkrkjhA lk/ku lk/k /ke djrkjhAA[3]

कवि मोक्षदा एकादशी व्रत कथा का वर्णन करते हुए कहता है–

ekxlh[k lYdk vfHkjkekA ekPNk iU; ,dknfl ukekA
crh ijk;u ekPN fclkykA /kk: dmLrHk v: cuekykAA[4]

1 सुसिद्धान्तोत्तम रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्ध प्रथम खण्ड, दो0 1923, चौ0 1–4, पृ0 904

2 सुसिद्धान्तोत्तम रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्ध प्रथम खण्ड, दो0 1923, चौ0 5–7, पृ0 904

3 सुसिद्धान्तोत्तम रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्ध प्रथम खण्ड, दो0 1923, चौ0 8, पृ0 904

4 सुसिद्धान्तोत्तम रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्ध प्रथम खण्ड, दो0 1924,

वह कहता है कि मार्गशीर्ष मास के शुक्ल पक्ष की इस मोक्षदा एकादशी का जो व्रत करते हैं उनके समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं। यह व्रत मोक्ष देने वाला तथा सब कामनायें पूरी करने वाला है।

सफला एकादशी का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि विधिपूर्वक इस व्रत को करना चाहिए–

L;kek im[k llQyk ukekA dhjfr dfyr nkfu vfHkjkekAA
lkfRod Loxi&nkfu gb lkbiA /kU; /kjkrydkjd gkbiAA
iitu fu;e lmRlo tkxjA ygfg veh&ll[k ufg Hkolkxj AA[1]

पौष शुक्ल एकादशी का नाम पुत्रदा एकादशी है। इसमें भी नारायण भगवान् की पूजा की जाती है। पुत्र की प्राप्ति के लिए पुत्रदा एकादशी का व्रत करना चाहिए–

djr i=nk cr l[kn c/;m lr mitkbA
:n ilo tkf[krUg tu ckãh ikrfg ikbAA[2]

माघ कृष्ण एकादशी, षट्तिला एकादशी कहलाती है–

ek?k refl [kVfryk dgkobA iU;k ijk iki fculkobAA[3]

तिल के छह प्रकार के प्रयोग होने के कारण यह षट्तिला एकादशी कहलाती है। इस व्रत के करने से अनेक प्रकार के पाप नष्ट हो जाते हैं।

कवि कहता है कि माघ शुक्ल एकादशी, जया एकादशी कहलाती है–

चौ0 1–2, पृ0 904

1 सुसिद्धान्तोत्तम रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्ध प्रथम खण्ड, दो0 1924, चौ0 5–7, पृ0 904–905

2 सुसिद्धान्तोत्तम रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्ध प्रथम खण्ड, दो0 1924, पृ0 905

3 सुसिद्धान्तोत्तम रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्ध प्रथम खण्ड, दो0 1925, चौ0 1, पृ0 905

ek?k l|Dy dh t;k dgh gbA ddkVd dfy dh x#Mh gbAA
ldy&i|U;&nkrk c|rdkjhA ldy ekPN dh ekug| lkjhAA[1]

इसका व्रत करने से मनुष्य पापों से छूट कर मोक्ष को प्राप्त होता है। इस जया एकादशी के व्रत से बुरी योनि छूट जाती है।

कवि कहता है कि फाल्गुन मास के कृष्ण पक्ष की एकादशी का नाम विजया एकादशी है–

QkYx|u fØLuk ijk ,dklhA fct;k uke dme|nh&jklhAA
c|r dfj ymfdd fct; ygkgh|A vPN; v: ikuh i|j tkgh|AA[2]

इसके व्रत के प्रभाव से मनुष्य को विजय प्राप्त होती है। इस विजया एकादशी के माहात्म्य के श्रवण व पठन से समस्त पाप नाश को प्राप्त हो जाते हैं।

चैत्र कृष्ण एकादशी का नाम पापमोचनी एकादशी है–

ikiiekpfu c|r txjkpfuA v/k v?kk; e: tk dk lkpfuAA
tkxb jkxb ckxb rkyfuA lk tu ygb dBcuekyfuAA
/kou ine yfyrk l| pbr dhA c|ge c/kkfnd ikrd irdhAA[3]

पापमोचनी एकादशी के व्रत को करने से ब्रह्महत्या, गर्भपात, बालहत्या,

---

1 सुसिद्धान्तोत्तम रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्ध प्रथम खण्ड, दो0 1925, चौ0 5–6, पृ0 905

2 सुसिद्धान्तोत्तम रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्ध प्रथम खण्ड, दो0 1925, चौ0 7–8, पृ0 905

3 सुसिद्धान्तोत्तम रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्ध प्रथम खण्ड, सो0 250 दो0 1926, चौ0 4–6, पृ0 905

सुरापान, आदि सब पाप नष्ट हो जाते हैं।

वैशाख शुक्ल एकादशी का नाम मोहिनी एकादशी है—

ek/ko /koyk ekfgfu ukebA djrk v?k gjrk nk dkebAA
Hkkfcr xfrnk;d gb ,gkA /kU;/kjk tk djb lugkAA[1]

इस एकादशी का व्रत करने से मनुष्य सब पापों तथा दुःखों से छूटकर मोह जाल से मुक्त हो जाता है।

कवि कहता है कि इस व्रत के प्रभाव से मनुष्य के सब पाप नष्ट हो जाते हैं और अन्त में गरुड़ पर चढ़कर विष्णुलोक को जाता है—

ije ekPN dg lk tu ibgfgA iklk:< fcLuij tbgfgAA[2]

कवि कहता है कि ज्येष्ठ कृष्ण एकादशी, अपरा एकादशी कहलाती है। अपरा एकादशी का व्रत तथा भगवान् का पूजन करने से मनुष्य सब पापों से छूटकर विष्णु लोक को जाता है—

vijk T;LBh fØLu dgkobA ift f=fcØe gfj ij tkobAA[3]

ज्येष्ठ शुक्ल एकादशी, निर्जला एकादशी कहलाती है—

uke futyk lYdk tBhA v| xfcr dk dku meBhAA[4]

इस दिन मनुष्य को दान अवश्य करना चाहिए—

1 सुसिद्धान्तोत्तम रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्ध प्रथम खण्ड, दो0 1926,, चौ0 1—2, पृ0 906

2 सुसिद्धान्तोत्तम रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्ध प्रथम खण्ड, दो0 1926, चौ0 5 पृ0 906

3 सुसिद्धान्तोत्तम रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्ध प्रथम खण्ड, दो0 1926, चौ0 6, पृ0 906

4 सुसिद्धान्तोत्तम रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्ध प्रथम खण्ड, दो0 1926, चौ0 7, पृ0 906

ufg| fu t!yk leku c:r vku ijr efg nf[kA
Hkotu HkoHk tuh lk ijin nkfu fclf[kAA[1]

आषाढ़ कृष्ण एकादशी का नाम योगिनी एकादशी है–

lfp fØLuk tkfxuh dgh gbA /kel ckfj tu| unh cgh gbAA[2]

यह व्रत करने से समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं। यह इस लोक में भोग और परलोक में मुक्ति देने वाला है।

आषाढ़ शुक्ल एकादशी, पद्मा या देवशयनी एकादशी कहलाती है–

lfp lYdk l;uh gfj ukekA c:r mÙkek jek vfHkjkekAA[3]

यह व्रत सब व्रतों में उत्तम है। यह सब मनुष्यों को करना चाहिए। यह व्रत इस लोक में भोग और परलोक में मोक्ष को देने वाला है–

ldy iki gkfjfu ;g l;uhA c:rh ink inek l|[k v;uhAA
ije ekPN dh dYi rjkcjA /ku ek:rh dg| eku& ljkcjAA[4]

चातुर्मास का व्रत इसी एकादशी से प्रारम्भ होता है–

pkr|ekl fc/kku tk lk icfUg dfg vkbA
c:r i:lx ek| tk dg lk efucjUg l|ukbAA[5]

---

1 सुसिद्धान्तोत्तम रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्ध प्रथम खण्ड, दो0 1926, पृ0 906

2 सुसिद्धान्तोत्तम रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्ध प्रथम खण्ड, दो0 1927, चौ0 2, पृ0 906

3 सुसिद्धान्तोत्तम रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्ध प्रथम खण्ड, दो0 1927, चौ0 5, पृ0 906

4 सुसिद्धान्तोत्तम रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्ध प्रथम खण्ड, दो0 1928, चौ0 5–6, पृ0 907

5 सुसिद्धान्तोत्तम रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्ध प्रथम खण्ड, दो0 1933,

श्रावण मास के कृष्ण पक्ष की एकादशी कामिका एकादशी कहलाती है। कवि के अनुसार इसके श्रवण मात्र से वाजपेय यज्ञ का फल मिलता है।

श्रावण मास के शुक्ल पक्ष की एकादशी पुत्रदा एकादशी कहलाती है। सन्तान के सुख की इच्छा रखने वालों को इस व्रत को अवश्य करना चाहिए। इसके माहात्म्य को सुनने से मनुष्य इस लोक में सन्तान सुख भोगकर परलोक में स्वर्ग को प्राप्त होता है।

भाद्रपद कृष्ण एकादशी का नाम अजा एकादशी है–

v tk ,dkfl Hkkn vf/kvkjhA iki i;kf/k vxfLr fcpkjhAA[1]

कवि कहता है कि इसके व्रत को करने से मनुष्य को बैकुण्ठ की प्राप्ति होती है और इसके कथा श्रवणमात्र से अश्वमेघ यज्ञ का फल प्राप्त हो जाता है।

भाद्रपद शुक्ल एकादशी का नाम वामन (परिवर्तिनी) एकादशी है। कवि के अनुसार जिसने भाद्रपद शुक्ल एकादशी को व्रत और पूजन किया उसने ब्रह्मा, विष्णु सहित तीनो लोकों का पूजन किया। अतः इस एकादशी का व्रत अवश्य करना चाहिए। इस दिन भगवान् करवट लेते हैं, इसलिए इसको परिवर्तिनी एकादशी भी कहते हैं।

आश्विन कृष्ण पक्ष एकादशी का नाम इन्दिरा एकादशी है–

vkfLou fØLu bfnjk ukebA lr /kunkbfu fQj gfj/kkebAA[2]

पृ0 910

1 सुसिद्धान्तोत्तम रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्ध प्रथम खण्ड, दो0 1934, चौ0 8, पृ0 910

2 सुसिद्धान्तोत्तम रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्ध प्रथम खण्ड, दो0 1935, चौ0 3, पृ0 910

यह एकादशी पापों को नष्ट करने वाली तथा पितरों को अधोगति से मुक्ति दिलाने वाली है।

आश्विन शुक्ल एकादशी का नामा पापांकुशा एकादशी है–

ikikd|lk uke b[k&/koykA iki fcfiu dg| ckju lcykAA[1]

कवि कहता है कि यह एकादशी मनुष्य को मनवांछित फल देकर स्वर्ग को प्राप्त कराने वाली है।

कार्तिक कृष्ण एकादशी का नाम रमा एकादशी है–

dkfr:d fØLuk jek ,dklhA djr jek cd|B fuoklhAA[2]

कवि रमा एकादशी का माहात्म्य वर्णन करते हुए कहता है कि जो इसे पढ़ते अथवा सुनते हैं, वे समस्त पापों से छूटकर विष्णुलोक को प्राप्त होते हैं।

कार्तिक शुक्ल एकादशी का नाम देव प्रबोधिनी एकादशी है। इसके व्रत को करने से गौ दान का फल प्राप्त होता है।

अधिक मास के शुक्ल पक्ष की एकादशी का नाम पद्मिनी है। इसका व्रत यत्नपूर्वक करने से मनुष्य कीर्ति को प्राप्त होकर बैकुण्ठ को जाता है।

अधिक मास के कृष्ण पक्ष की एकादशी का नाम परमा एकादशी है। यह मनुष्यों को मोक्ष, भोग तथा आनन्द देने वाली, पवित्र व पापनाशक है।

इस प्रकार कवि रूद्र प्रताप एकादशी माहात्म्य वर्णित करते हुए अन्त में

---

1 सुसिद्धान्तोत्तम रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्ध प्रथम खण्ड, दो0 1935, चौ0 4, पृ0 910

2 सुसिद्धान्तोत्तम रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्ध प्रथम खण्ड, दो0 1935, चौ0 5, पृ0 910

कहते हैं कि जो एकादशी व्रत को विधिपूर्वक और श्रद्धा से करेगा, वह इन्द्र के समान भोगों को भोगकर अन्त में तीनों लोकों में वंदित होकर विष्णु लोक को प्राप्त होगा।

(ढ) रसायन वर्णन

चौरासी लाख योनियों से भटकता हुआ प्राणी भगवत्कृपा से मनुष्य योनि प्राप्त करता है। मानव–जीवन का एकमात्र उद्देश्य है– अपना कल्याण करना अर्थात् जन्म–मरण के बंधन से मुक्त होना। मनुष्य–योनि के अतिरिक्त सभी योनियों में जीव अपने कर्मानुसार केवल भोग भोगता है। मात्र मनुष्य को ही विवेक और कर्म करने की सामर्थ्य ईश्वर कृपा को प्राप्त है। पर यह सामर्थ्य भी पूरी तरह सफल तभी होता है, जब शरीर और मन–दोनों पूर्ण स्वस्थ होते हैं। इसके लिए हम लोगों को सावधान रहने की आवश्यकता है। शरीर की प्रकृति तो स्वस्थ रहने की है, हम अपनी असावधानी के कारण अस्वस्थ हो जाते हैं। कभी–कभी प्रारब्धवशात् अपने पूर्वकृत पापों के कारण भी व्यक्ति आकस्मिक रूप में किसी न किसी रोग से ग्रस्त हो जाता है।

शास्त्रों में ऋषि–महर्षियों द्वारा मानव मात्र के लिए जीवनचर्या और दिनचर्या प्रस्तुत की गयी है, जिसका पालन कर्त्तव्यबुद्धि से करने पर मनुष्य का शरीर स्वस्थ, मन शान्त और बुद्धि निर्मल होती है।

कवि रूद्र प्रताप सिंह ने रामखण्ड रामायण में श्रुति–स्मृति, पुराण, इतिहास आदि ग्रन्थों और वैद्यक सिद्धान्तों के आधार पर तथा वर्तमान आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर शास्त्रोक्त जीवनर्या तथा दिनचर्या प्रस्तुत की है–

rk r| fnC;mjo/kh dgh gbA tkr| l|j vejRo ygh gbAA
ldy :kne; vke; gjrbA fcfc/k cyRo ijkØe djrbAA

fpjthou vjkxdjrk gbA bfnUg d l|cht! Hkjrk gbAA[1]

कवि कहता है कि साठ वर्ष की अवस्था के पश्चात् रसायन, सेवन से विशेष लाभ नहीं मिलता। कारण यह है कि वात–पित्तादि दोष अन्य धातु से मिलकर आँतों में अपना स्थायी घर बना लेते हैं। उन्हें गलाना कठिन हो जाता है। इसलिए रसायन सेवन या तो युवावस्था के आरम्भ होने पर अथवा युवावस्था के मध्य में चालीस वर्ष की अवस्था में करना चाहिए; क्योंकि चालीस पचास वर्ष के पश्चात् धातुओं का क्षय होना आरम्भ हो जाता है।

अतः स्वास्थ्यरक्षा में रसायन का बहुत महत्व है। रसायन से सभी धातु पुष्ट होते हैं, जिससे ओज दृढ़ होता है, जो रोगक्षमता का मूल है। रसायन तारूण्य को बचाये रखता है। अतः इसे 'वयः स्थापन' भी कहते हैं। रसायनों का प्रयोग प्रकृति के अनुसार करना चाहिए।

कवि ने रसायनशास्त्र के अन्तर्गत अवस्था, आयुष्य, मेधा और बल को बढ़ाने वाले पौष्टिक रसायनों का वर्णन किया है।

कवि चन्द्रप्रभा गुटिका का वर्णन करते हुए कहता है कि–

pni iHkk xfVdk ijk mDruiku fc/kkuA
ldy jkxg=h lgh lcfg tkb l|tkuAA[2]

यह शरीर के विभिन्न विकारों के लिए सुप्रसिद्ध औषध है। यह विकारों को नष्ट करके शरीर के जल को बढ़ाती तथा पोषण करती है। यह बलवर्धक तथा कान्तिवर्धक है। चन्द्रप्रभा गुटिका के सेवन से रक्तादि धातुओं की पुष्टि होती है, वायु का शमन होता है तथा शरीर पुष्ट होकर कान्तिवान एवं ओजपूर्ण हो जाता है।

---

1 रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्ध द्वितीय खण्ड दो0 2055, चौ0 6–8, पृ0 972

2 रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्ध द्वितीय काण्ड दो0 2062, पृ0 974

कवि त्रिकटु तथा त्रिफला के मुख्य–गुण–धर्म के बारे में लिखते है–

pUniHkk xkfVdku dh vkfu djr 0;ogk:A
f=dV f=Qy fipefnuh vm eyLVuh pk:AA[1]

त्रिकटु–सोंठ, कालीमिर्च, पीपल की बराबर मात्रा को त्रिकटु तथा त्रिफला–हरड़, बहेड़ा, आँवला की समान मात्रा को त्रिफला कहते हैं।[2]

ये औषधियाँ पित्तशामक, मृदु विरेचक और सौम्य औषधि है। इनके चूर्ण के सेवन से आँतों में किसी प्रकार की जलन या विकार उत्पन्न नहीं होते। यह चूर्ण उदर की पूर्ण सफाई करके नैराश्यता को हटाकर शरीर में स्फूर्ति लाता है।

आँवले के महत्व का वर्णन करते हुए कवि लिखता है–

;g lnfj lnj voygkA dj fugkj ;g etly ngkA
Toj f=nk[k r mnHko tkbA fHkUu&fHkUu =; tkr lk gkbAA
lkukfUer lou tkb djghA ickfnr vke; lc gjghAA
dkl&Lokl Hkxnj jkxkA xn ieg v: e= fc;kxkAA[3]

आँवला सर्वश्रेष्ठ शक्तिदायक फल है। इसका दूसरा नाम अमृत–फल है। यह शरीर को स्वस्थ बनाने के साथ–साथ सुन्दर भी बनाता है। इससे रक्त शुद्ध होता है और शरीर में रोग–प्रतिरोधक शक्ति बढ़ती है। आँवला सर्वरोगनाशक दिव्य अमृत–फल है। यह शरीर में बल–वीर्य की वृद्धि करता है। मन्दाग्नि, चर्मरोग, रक्त के रोग, मूत्र रोग, हड्डियों के रोगों को दूर करने में इसका विशेष योगदान है।

आँवले में जितने रोग–प्रतिरोधक, रक्त–शोधक और बल–वीर्यवर्धक तत्त्व हैं, उतने संसार की किसी वस्तु या औषधि में नहीं है। इसलिए स्वास्थ्य–सुख

1 रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्ध द्वितीय काण्ड दो0 2059, पृ0 974
2 कल्याण, गीता प्रेस, गोरखपुर, आरोग्यांक, वर्ष 75, सन् 2001
3 रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्ध द्वितीय काण्ड दो0 2063, चौ0 5–8 पृ0 975

चाहने वालों को अपने आहार में आँवलें को प्रमुख स्थान देना चाहिए।

इस प्रकार कवि ने रसायनों के विविध प्रयोगों का वर्णन वैज्ञानिक दृष्टिकोण से किया है। कवि का औषधि एवं रसायन ज्ञान विस्मयकारी है। वैसे कवि कोई नयी बात नहीं कहता बल्कि जो ज्ञान उसे पूर्ववर्ती एवं प्राचीन वैद्यक ग्रन्थों से मिला है, उसी का उल्लेख प्रायः वह भी करता है लेकिन अपने अतिरिक्त ज्ञान का विवरण जब वह औषधि चर्चा के क्रम में करता है तो लगता है कि कवि स्वयं वैद्य है जो औषधियों के नुस्खे बताने में माहिर हैं।

¼ण½ रस वर्णन

रस वर्णन करते हुए कवि कहता है–

;kg dy fclke ek jfld jlu dk xkuA
dfjgm futf/k[kuk&fcfgr ljlj lkyb ekuAA[1]

कवि रस वर्णन इस प्रकार करता है कि रोग चाहे छोटा हो या बड़ा, हल्का हो या गम्भीर सबके लक्षण कवि पहचानता है। रोगों, उससे सम्बन्धित औषधियों और उनके प्रभाव– प्रत्येक बिन्दु पर कवि प्रकाश डालता है–

xq/kd ikjn tkfr QyA fc[k C;k[k yox lpu dyAA
[kfy, [ky ek ldekfj jlA enkfxfu l[kk nk[k ulAA[2]

घृतकुआँरि के महत्व के बारे में कवि लिखता है–

f?kmdvkfj jl xfVdk ck/khA lku lku fefr dj lfp lk/khAA

ukuk jkxl fcuk djh,A dQ lehj ds thr /kjh,AA[3]

घृत कुमारी का रस समस्त पाचन विकृतियों, वात रोगों को दूर कर शरीर

---

1 रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्ध द्वितीय खण्ड दो0 2076, पृ0 982
2 वही, छंद 349, पृ0 983
3 वही, दो0 2078, चौ0 7–8, पृ0 984

की जीवनी शक्ति को बढ़ाकर अनेक रोगों से निवृत्ति करता है।

कवि बंध्या स्त्री के गर्भ धारण करने के संबंध में लिखता है–

tk Loj pyb lkb dj [kkbA ifr fuxin rc lirfr tkbAA
jtm ijhfPNr ukfjv tkbA lirfr gkb u lil; dkbAA
mRre c/;k xel fgr /kRr ii;kx fc/kkuA
c/;k xHk lq/kkfjuh ;g ii;kxek[;kuAA[1]

कवि के रस वर्णन की सबसे बड़ी विशेषता यह हे कि रोगों और सम्बन्धित औषधियों का संकेत कवि ने इस प्रकार किया है कि किसी भी प्रकार की आशंका की गुंजाइश समाप्त हो जाती है। अन्त में वह कष्टों को हरने वाले, रोग हारक रस वर्णन का परायण करता है।

¼t½ रस भूयसी वर्णन

रस भूयसी वर्णन में सबसे बड़ी विशेषता यह है कि जहाँ कवि यह आवश्यक समझता है कि सम्बन्धित रोग एवं निदान की व्याख्यात्मक स्थिति प्रकट करनी आवश्यक है, वहाँ वह अपना ज्ञान थोड़ा विस्तार से प्रकट करता है लेकिन जहाँ उसका काम सीधे–सादे ढंग से चल जाता है, वहाँ वह अपना आशय एवं संदर्भ प्रकट करने के लिए अनायास शब्द विस्तार करने का प्रयत्न कदापि नहीं करता, परिणामस्वरूप आयुर्वेदीय ज्ञान विश्वसनीय प्रतीत होता है। सम्भवतः कवि इसके लिए सावधानी ही बरतता है। वह कहीं तो व्याख्यात्मक शैली में वर्णन करता है और कहीं अपनी बातें संक्षेप में रख देता है–

dud fc[kk vigkfjuh gb ;g xqfVdk ukeA
;g Loui Toj ukfluh cuu dhUg fcjkeAA[2]

---

1 रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्ध द्वितीय खण्ड, दो0 2084, चौ0 7–8,पृ0 987
2 रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्ध द्वितीय खण्ड, दो0 2091, पृ0 991

fgr [kMRo cc/kd cht i jkØe HkfjA
e=&jkx gjrk ldy fir dQ ckbo nfjAA[1]

cht /krj f=dV Qy jkebA fl)kjFk cp fljh [kyk ebAA[2]

इसी प्रकार वह कभी–कभी मात्र एक सोरठा, एक दोहे और एक ही चौपाई में सब कुछ व्यक्त कर देता है–

lYd thjk fyvko rfr;k lfEeykoA
vfXu ckrh f[kyko Hkkt r efDr ikoAA[3]

cuu djh jljkt ukuk jl fl[kk dh jhfrA
vke; vuke; =Lr yf[k dfg vut ij dfj ihfrAA
,fg /kkjuk jl mfDrrk xr jkx dk lrkiA
jlet jh Hkk[kk djh fui d#[k :nirkiAA[4]

इस प्रकार हम संक्षेप में कह सकते हैं कि कवि ने आयुर्वेद प्रकरण (रसायन वर्णन, रस वर्णन, रसभूयसी वर्णन) के विस्तार द्वारा हिन्दी साहित्य जगत को एक अन्य चरक संहिता देने का प्रयास किया है।

अतः जीवन के उत्कर्ष के लिए तथा अपने कल्याण के लिए आचार धर्म अर्थात् सदाचार का पालन ही मनुष्य का मुख्य धर्म है।

जो व्यक्ति सदैव हितकर आहार–विहार का सेवन करता है, सोच–समझकर कार्य करता है, विषयों में आसक्त नहीं होता, जो दानशील समत्व बुद्धि से युक्त सत्यपरायण, क्षमावान् बुद्धजनों की सेवा करने वाला है, वह निरोग

1 रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्ध द्वितीय खण्ड, दो0 2096, पृ0 994
2 रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्ध द्वितीय खण्ड, दो0 2098, चौ0 1, पृ0 995
3 रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्ध द्वितीय खण्ड, छंद 365, पृ0 997
4 रामखण्ड रामायण, किष्किंधाकाण्ड उत्तरार्ध द्वितीय खण्ड, छंद 386, पृ0 1006

होता है।

ये सभी विशेषताएँ आचारधर्म के पालन से ही सम्भव है और यही स्वस्थ रहने की रामबाण औषधि है।